

दिव्य जीवन की भांकिर्या

SPS

891.433 Y 4 D



32869

जैन

सरिता साहित्य मंडल प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

दिव्य जीवन की झां कि यां

—उद्बोधक प्रसंग, पावन स्मृतियां और प्रेरक घटनाएं—

यशपाल जैन

Dive Jeevan ke
Ghan - Ki - YAN
Udbodhak Prasang, Pavan
Samitriyan Aur Prayrak
Ghatnaein

Yashpal Jain

••स्केड/Scanned••

१९६८

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

Sasta Sahitai Mandal
Prakashan Mai Delhi

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली

32869

3-00

5-8-70

H83.1
Y4 D

पहली बार : १९६८

मूल्य
तीन रुपये

3/-

मुद्रक

महावीर प्रेस,

भेलूपुर, वाराणसी-१

नई पीढ़ी को

जिसपर

विश्व का भविष्य निर्भर करता है

प्रकाशकीय

‘मण्डल’ का बराबर प्रयत्न रहा है कि वह पाठकों के लिए ऐसा साहित्य उपलब्ध करे, जो सुपाठ्य तो हो ही, साथ ही चरित्र-निर्माण की प्रेरणा भी दे। यों तो उसका सारा साहित्य ही इस भावना से प्रेरित है, फिर भी उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महापुरुषों की जीवनियां, उनके वचन तथा लोकोपयोगी ग्रन्थों के चुने हुए सुभाषित आदि विशेष रूप से प्रकाशित किये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भी इसी दिशा की एक कृति है। इसकी छोटी-छोटी कथाएँ, विशिष्ट पुरुषों के जीवन-प्रसंग तथा विभिन्न प्रवासों की लेखक की अनुभूतियां पाठकों को बड़ी ही स्वस्थ और विचार-प्रेरक सामग्री प्रदान करती हैं। रचनाएँ कितनी रोचक हैं, इसका अनुमान तो पाठक स्वयं ही करेंगे, लेकिन हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि एक बार पुस्तक को हाथ में उठा लेने पर बिना पूरी पढ़े उसे छोड़ना शायद ही सम्भव हो सके।

हर आदमी के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जब उसे अपनी कठिनाइयों में से निकलने के लिए रास्ता नहीं सूझता और उसे सहारे की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक की सामग्री ऐसे व्यक्तियों को अवश्य प्रेरणा देगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

हमें आशा है कि पुस्तक का सर्वत्र स्वागत होगा।

—मंत्री

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना, सिवा इसके कि इनकी रचनाओं के पीछे एक दृष्टि है। मैं मानता हूँ, हर आदमी में सद् और असद्, दोनों प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। उनमें से जिस वृत्ति को अधिक बल मिल जाता है, उसी के इशारे पर मनुष्य चलता है। इस पुस्तक की सामग्री को जुटाने में मेरा यही प्रयत्न रहा है कि हमारी सद्वृत्तियाँ प्रोत्साहित हों और हम सब नीति के रास्ते पर चलें।

रचनाओं को मैंने तीन भागों में बांटा है। पहले भाग में बोध-कथाएँ हैं—कुछ पुरानी, कुछ नई। दूसरे भाग में उन चुने हुए व्यक्तियों के जीवन-प्रसंग हैं, जो मानवता के उपासक थे और जिन्होंने मानव-जाति को सुखी बनाने के लिए बराबर प्रयत्न किया। तीसरे भाग में मेरी वे अनुभूतियाँ हैं, जो मुझे देश-विदेश के प्रवास में हुईं। ये अनुभूतियाँ भी मानव को खरा बनने की प्रेरणा देती हैं।

इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना। पाठक पुस्तक को स्वयं पढ़ें और देखें कि वे कहाँ से क्या और कितना पा सकते हैं।

इस पुस्तक की तैयारी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जिनका सहयोग रहा है, उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

७/८, दरियागंज,
दिल्ली.

—यशपाल जैन

१ सितम्बर १९६८

विषय-सूची

१ : : उद्बोधक प्रसंग	१-५१
१. बेजोड़ बलिदान	३
२. सन्त की सिखावन	४
३. आगे बढ़ने का भेद	६
४. मानव का कर्तव्य	८
५. सब से धनी	९
६. जैसी करनी वैसी भरनी	१०
७. उत्तम क्षमा	१३
८. पराई चोट की अनुभूति	१४
९. मन जीते, जग जीते	१४
१०. दान का आनंद	१५
११. सफलता की कुंजी	१६
१२. निन्यानबे का फेर	१७
१३. गुस्से की दवा	१९
१४. सवाल का जवाब	२०
१५. सब जन एक समान	२१
१६. दिल की पवित्रता	२१
१७. अवसर	२२
१८. लड़ाई में भी सचाई	२३
१९. रस्सा काट दिया	२४
२०. विचारों की महिमा	२४
२१. मैं पेड़ से भी गया-बीता थोड़ा हूँ	२५
२२. सन्त की सिखावन	२६
२३. भूखे का उपदेश	२७
२४. बहादुर कौन ?	२८

२५. दूर की सोचने वाला		२२
२६. हमारी भूमि और हम		३१
२७. दिवाली की नई रोशनी		३२
२८. घर बाहर का भेद		३४
२९. नया वसंत		३४
३०. होली का मिलन		३५
३१. बीमारी का इलाज		३६
३२. तन्दुरुस्ती का रहस्य		३८
३३. विवेक से काम लो		३९
३४. साधू की सीख		४०
३५. खरी कमाई		४०
३६. बेटे की ममता		४१
३७. चोर साधु बन गया		४२
३८. सुख बाहर नहीं, अन्दर है		४३
३९. सब पर दया		४४
४०. वे पढ़ी की सीख		४५
४१. क्रोध चाण्डाल होता है		४६
४२. कांटे के बदले फूल		४८
४३. सहनशीलता का फल		४९
४४. दिल का दीया		५०

२ : : पावन स्मृतियां

५३-७३

१. गांधीजी की आत्मीयता		५५
२. जवाहरलालजी की निडरता		५६
३. मालवीयजी का राष्ट्र-भाषा-प्रेम		५९
४. सरोजिनी नायडू की गर्जना		६१
५. विनोबाजी की साधना		६३

६. निरालाजी की शिष्टता		६५
७. सरदार पटेल की दृढ़ता		६७
८. राजेन्द्र बाबू की विनम्रता		६८
९. रफ़ी साहब की कर्मठता		७०
१०. नेताजीकी न्याय-प्रियता		७२
३ : : प्रेरक घटनाएं		७५-१३४
१. सच्ची दौलत		७७
२. देश-प्रेम की प्रतिमा		७९
३. झील की बेटो		८१
४. प्रवासी की ममता		८४
५. रूसी ड्राइवर की चिन्ता		८७
६. निर्मोही का मोह		८९
७. परदेशी का प्यार		९४
८. आसान रास्ता		९६
९. विदेशी से सबक		९९
१०. गार्ड की सदाशयता		१००
११. सिक्के का दूसरा पहलू		१०३
१२. आदमी आदमी एक से		१०७
१३. श्रद्धा		१०८
१४. समर्पित व्यक्तित्व		११०
१५. सेतुबन्ध के निर्माता		११३
१६. मूक सेविका		११६
१७. स्वदेश का अभिमान		११९
१८. प्यार से बढ़कर दुनिया में और है क्या!		१२२
१९. प्राणीमात्र का अनुरागी		१२६
२०. सेवा का सन्तोष		१३०

: १ :

उद्बोधक प्रसंग

१११

गंगार कपडिहूट

: १ :

बेजोड़ बलिदान

बहुत पुरानी बात है। पैगम्बर साहब की मौत के कुछ साल बाद अरबों और रूमियों के बीच जोर की लड़ाई हुई। दोनों ओर के बहुत से लोग मारे गये।

शाम होने पर लड़ाई बन्द हो जाती थी। तब दोनों पक्षों के लोग अपने रिश्तेदारों और मित्रों की खैर-खबर लेने के लिए आपस में मिलते थे।

एक दिन जब लड़ाई बन्द हुई तो अरब सेना का एक अरब अपने भाई को, जो दूसरी ओर से लड़ रहा था, ढूँढ़ने निकला। वह चाहता था कि अगर वह लड़ाई में घायल हो गया हो तो उसे ले आवे और उसकी सेवा करे। मारा गया हो तो दफना दे। खाना होते समय उसने सोचा, हो सकता है कि उसे पानी की जरूरत हो। इसलिए उसने एक लोटा पानी साथ ले लिया।

एक हाथ में लालटेन और दूसरे में पानी का लोटा लिये वह लड़ाई के मैदान में पहुँचा। वहाँ बहुत से लोग पड़े थे। कुछ मारे गये थे। कुछ जिन्दा थे और घावों के दर्द से कराह रहे थे। उनके बीच उसे भाई मिल गया। उसके गहरे घाव लगे थे, जिनसे खून बह रहा था। प्यास के मारे वह तड़प रहा था। भाई ने वहाँ जाकर लालटेन नीचे रख दी और जैसे ही उसे पानी पिलाने को हुआ कि दूसरी ओर से आवाज आई—“पानी।”

भाई ने अपना मुँह बन्द कर लिया और अरब को इशारा किया कि पहले उस आदमी को पानी पिलाओ।

बेचारा भाई उसी ओर तेजी से चला, जिधर से पानी की पुकार आई थी। पास जाकर देखता क्या है कि वह बहुत बड़ा सरदार है। अरब जैसे ही उसे पानी पिलाने को झुका कि तीसरी ओर से आवाज आई—“पानी !”

४ : दिव्य जीवन की झांकियां

सरदार ने बड़ी कठिनाई से, रुक-रुक कर, बोलते हुए कहा, “पहले वहां पानी पिलाओ।”

अरब सपाटे से उधर को रवाना हुआ। वहां पहुंच कर जैसे ही घायल के मुंह में पानी डालने को हुआ कि उसने आखिरी सांस ले ली। बेचारे को पानी नसीब न हुआ। तब अरब दौड़ कर सरदार के पास गया। उसकी भी आंखें सदा के लिए बन्द हो गई थीं। फिर वह उदास और दुखी मन से अपने भाई के पास आया। देखा, वह भी इस संसार से विदा हो चुका है।

तीन घायलों में से किसी को भी पानी न मिला, पर दो मान-वता के इतिहास में अपना नाम सदा के लिए अमर कर गये।

: २ :

सन्त की सिखावन

किसी नगर में एक जुलाहा रहता था। वह स्वभाव का बड़ा अच्छा था। सभी से मीठा बोलता था और कभी किसी से नाराज नहीं होता था। लोग उसे सन्त कहा करते थे।

एक दिन कुछ शरारती लड़के उसके यहां पहुंचे। वे उसकी परीक्षा लेकर देखना चाहते थे कि उसे कैसे गुस्सा नहीं आता। उनमें से एक बहुत धनी आदमी का लड़का था। उसे अपने पैसे का घमण्ड था। उन लड़कों को देखते ही जुलाहे ने बड़े प्यार से कहा, “आओ, बेटा, तुम लोगों को क्या चाहिए?”

सामने रखी साड़ियों में से एक की ओर इशारा करके एक लड़के ने कहा, “मुझे वह साड़ी चाहिए। उसका क्या लोगे?”

जुलाहे ने कहा, “दो रुपये।”

उस लड़के ने वह साड़ी हाथ में लेकर उसके दो टुकड़े कर डाले। बोला, “मुझे पूरी नहीं, आधी चाहिए। इसका क्या लोगे?”

जुलाहे ने बड़ी शान्ति से कहा, “एक रुपया ।”

उस नौजवान ने उस आधी साड़ी के भी दो टुकड़े करके पूछा,
“इसका क्या दाम होगा ?”

“आठ आना ।” जुलाहे ने बिना किसी प्रकार की नाराजी के कहा ।

युवक तो उसको चिढ़ाना चाहता था । वह साड़ी के टुकड़े-पर-टुकड़े करता गया, पर उस जुलाहे ने न उसको रोका, न डांटा, न अपने माथे पर शिकन तक आने दी ।

जब साड़ी के बहुत-से टुकड़े हो गये तो हँस कर लड़का बोला,
“ये टुकड़े मेरे किस काम के ! मैं इन्हें नहीं खरीदूंगा ।”

जुलाहे ने बिना किसी तेजी के कहा, “तुम ठीक कहते हो बेटे, ये टुकड़े अब तुम्हारे क्या, किसी के भी काम नहीं आ सकते ।”

युवक को उसकी इस बात पर कुछ शर्म आई । उसने कहा,
“यह लो, मैं तुम्हें पूरी साड़ी का दाम दिये देता हूँ ।”

जुलाहे ने रुपये नहीं लिये । बोला, “मैं इन टुकड़ों को जोड़कर काम में ले आऊंगा । जब ये तुम्हारे काम नहीं आ सकते तो मैं इनका दाम कैसे ले सकता हूँ !”

लड़के के ऊपर तो अपने धन का नशा चढ़ा था । उसने कहा,
“मेरे पास बहुत रुपये हैं, पर तुम गरीब हो । मैंने तुम्हारी चीज खराब कर दी । उसका घाटा मुझे पूरा करना चाहिए ।”

जुलाहे ने धीमी आवाज में कहा, “क्या तुम इसका घाटा पूरा कर सकते हो ? क्या तुम समझते हो कि रुपये से यह घाटा पूरा हो जायगा ? देखो, किसानों की मेहनत से कपास पैदा हुई ! उसकी रुई से मेरी स्त्री ने सूत काता । मैंने उस सूत को रंगा, फिर उससे साड़ी बुनी । हमारी मेहनत तब कारगर होती जब कोई उस साड़ी को पहनता । तुमने तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ! इतने लोगों

६ : दिव्य जीवन की झांकियां

की मेहनत बेकार गई। रुपये इस घाटे को कैसे पूरा कर सकते हैं।”

जुलाहे की आवाज में तनिक भी आवेश नहीं था। वह तो उसे समझा रहा था, जैसे कोई बाप बेटे को समझाता है।

लड़का पानी-पानी हो गया। उसकी आँखें भर आईं। वह जुलाहे के पैरों पर गिर गया।

जुलाहे ने उसे उठाकर छाती से लगाते हुए कहा, “बेटा, अगर मैं दो रुपये का लालच करके ले लेता तो तुम्हारी जिन्दगी का वही हाल हुआ होता, जो इस साड़ी का हुआ। वह किसी के काम न आती। अब तुम समझ गये। आगे ऐसी गलती कभी नहीं कर सकते। एक साड़ी खराब हुई, दूसरी तैयार हो सकती है, लेकिन जिन्दगी बिगड़ गई तो दूसरी कहाँ से लाओगे?”

लड़का और उसके साथी बहुत शर्मिन्दा हुए और सिर नीचा करके अपने घर चले गये।

यह जुलाहे थे दक्षिण के महान् सन्त तिरुवल्लुवर, जिनका लिखा ‘कुरल’ आज दो हजार वर्ष बाद भी बड़ी श्रद्धा से पढ़ा जाता है।

: ३ :

आगे बढ़ने का भेद

एक बार दो भाई एक मुकदमे में फंसकर अदालत में पहुँचे। उनमें एक भाई लखपति था, दूसरा कंगाल। न्यायाधीश को यह बात मालूम हुई तो उसे बड़ा अचरज हुआ। उसने पैसे वाले से पूछा, “क्यों जी, तुम दोनों सगे भाई हो, लेकिन तुम इतने अमीर हो और तुम्हारा भाई इतना गरीब है। ऐसा क्यों है?”

धनी भाई ने न्यायाधीश की बात सुनी। बोला, “आज से कोई

पांच साल पहले जब हमारे पिता मरे तो उनकी दौलत हम दोनों भाइयों को बराबर-बराबर मिली। दो लाख रुपये मेरे हिस्से में आये और उतने ही मेरे इस भाई को मिले।”

न्यायाधीश ने अचरज से कहा, “अच्छा ! तब पांच साल के भीतर इसके इतने सारे रुपये कैसे उड़ गये ?”

भाई बोला, “इसके हाथ में जैसे ही पैसा आया, यह अपने को धनी समझने लगा। बहुत से नौकर रख लिये। उन पर हुक्म चलाता—‘जाओ, यह करो, वह करो।’ अपने हाथ से तिनका भी न तोड़ता। धीरे-धीरे इसे आलस ने घेर लिया। नौकरों ने देखा कि मालिक की आंखें बन्द हैं और वह हाथ-पैर भी हिलाना नहीं चाहता तो वे मनमानी करने लगे। उन्होंने पैसा पानी की तरह बहाया। देखते-देखते वह दिन आ गया, जब इसके पास कौड़ी भी न रही।”

“लेकिन,” न्यायाधीश ने पूछा, “तुमने क्या किया ?”

भाई ने कहा, “मैंने ? पैसे मिल जाने पर भी अपने हाथ-पैर की मेहनत नहीं छोड़ी। नौकर मेरे यहां भी थे, लेकिन मैं अपने इस भाई की तरह उनसे यह नहीं कहता था कि ‘जाओ, यह काम करो, वह काम करो।’ मैं तो कहता था—‘आओ, मेरे पीछे आओ।’ यानी काम करने में मैं हमेशा आगे रहता था। किसी ने कहा है न कि जो अपनी मदद आप करता है, उसकी मदद सब करते हैं। मैंने कभी दूसरों के ऊपर काम नहीं छोड़ा। छोटा-बड़ा जो भी काम हुआ, मुस्तैदी से किया। दूसरों से बस मदद ली। आप जानते हैं, इसका नतीजा क्या हुआ ?”

न्यायाधीश ने कहा, “क्या ?”

वह बोला, “मेरी आंखें हमेशा खुली रहीं। कौड़ी-कौड़ी पर मेरी निगाह रही और मैं कभी किसी के भरोसे नहीं रहा। इससे

८ : दिव्य जीवन की झांकियां

मेरी दौलत बढ़ी और आज मेरे पास लाखों रुपये हैं। अगर मैं भी अपने इस भाई की तरह दूसरों पर निर्भर रहा होता तो मेरी वही हालत हुई होती, जो इसकी हुई।”

: ४ :

मानव का कर्तव्य

किसी जंगल में एक साधु कुटी बना कर रहते थे। बड़ा निर्जन स्थान था। साधु को जो मिल जाता, खा लेते और ध्यान-तपस्या में लीन रहते।

एक दिन रात को बड़े जोर की वर्षा हो रही थी। आसमान में काली घटाएं छाई थीं। बिजली कड़क रही थी। अपनी कुटिया का दरवाजा बन्द करके साधु अन्दर लेटे थे। अचानक द्वार पर किसी के थपथपाने की आवाज सुनाई दी। साधु ने सोचा, यह कौन हो सकता है! जब-तब वहां जंगली जानवर आ जाया करते थे, पर ऐसे तूफान में तो कोई भी आने की हिम्मत नहीं कर सकता था। वह उठे और उन्होंने दरवाजा खोला तो देखते क्या हैं, सामने पानी में सराबोर एक आदमी खड़ा है। साधु को देखते ही वह कांपती आवाज में बोला, “महाराज, मैं रास्ता भूल कर इधर आ गया हूं और मुसीबत में फंस गया हूं। बचने के लिए यहां कोई जगह नहीं है। आपकी बड़ी कृपा होगी, अगर यह रात मुझे यहां गुजार लेने दें। सबेरा होते ही चला जाऊंगा।”

साधु ने कहा, “वाह, यह तुमने खूब कही। अरे भाई, अन्दर आओ। यह कुटिया तुम्हारी ही है। इसमें एक आदमी सो सकता है, दो बैठ सकते हैं। आओ, हम दोनों आराम से बैठेंगे।”

इतना कह कर साधु बड़े प्यार से उस आदमी को भीतर ले गये और दरवाजा बन्द करके दोनों मजे में बैठ गये।

कुछ ही देर बीती होगी कि फिर किसी ने दरवाजा खट-खटाया। साधु ने उठकर दरवाजा खोला। देखा, पानी में भोगा, थरथर कांपता, एक आदमी खड़ा था। उसने भी साधु से वही बात कही, जो पहले ने कही थी। अन्त में बोला, “स्वामीजी, वस कैसे ही यह रात निकल जाय। आपको थोड़ी दिक्कत तो होगी, पर जरा-सी जगह दे देंगे तो आपका बड़ा अहसान होगा।”

साधु ने कहा, “इसमें अहसान की क्या बात है, भैया! मुसीबत में एक-दूसरे की मदद करना इंसान का फर्ज है। इस कुटिया में एक आदमी के सोने की जगह है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े हो सकते हैं। तीन आदमी मिल जायं, इससे बड़ा भाग्य और क्या हो सकता है! आओ, अन्दर आओ, हम तीनों जने खड़े-खड़े मौज से रात गुजारेंगे।”

: ५ :

सब से बड़ा धनी

एक आदमी था। बहुत ही दीन और फटेहाल। चेहरे पर हवाईयाँ उड़ रही थीं। उसे हैरान देखकर किसी दूसरे आदमी ने पूछा, “क्यों भाई, क्या बात है? इतने परेशान क्यों दिखाई दे रहे हो?”

वह बोला, “वात यह है कि मैं बहुत ही गरीब हूँ। मेरे पास कुछ भी नहीं है।”

“कुछ भी नहीं है!” दूसरे ने अचरज से कहा, “तुम सच नहीं बोल रहे हो।”

पहले की बेबसी और गहरी हो गई। बोला, “मैं आपसे सच कहता हूँ। बिना बात किसको हैरान होना अच्छा लगता है?”

१० : दिव्य जीवन की झांकियां

“ठीक । तो तुम एक काम करो । तुम्हारे पास दो कान हैं । एक कान काट कर मुझे दे दो । मैं तुम्हें एक हजार रुपया दे दूंगा । बोलो, तैयार हो ?”

“नहीं, मैं अपना कान नहीं दे सकता ।”

“अच्छा, तो अपनी दो आंखों में से एक आंख दे दो और यह लो पांच हजार रुपये ।”

“जी, नहीं । मैं आंख भी नहीं दे सकता ।”

“तो लाओ एक हाथ दे दो और यह लो दस हजार रुपये ।”

“जी, नहीं, यह भी नहीं होने का ।”

“इसके मानी यह हुए कि तुम्हारे पास एक दूने दो, अर्थात् दो हजार से ज्यादा के कान हैं, पांच दूने दस, दस हजार से ज्यादा की आंखें हैं और दस दूने बीस, बीस हजार से ज्यादा के हाथ हैं । मैं और चीजों को छोड़े देता हूँ । सिर्फ कान, आंख और हाथ ही तुम्हारे दो, दस और बीस यानी बत्तीस हजार से ज्यादा के हो गये तो पूरा शरीर तो जाने कितने का होगा ।”

पहला चुप ।

दूसरे ने कहा, “भैया, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे पास कितनी बड़ी दौलत है । जिसके पास अच्छी-अच्छी बातें सुनने के लिए दो कान हों, अच्छी-अच्छी चीजें देखने के लिए दो आंखें हों और अच्छे-अच्छे काम करने के लिए दो हाथ हों, उससे बढ़कर धनी और कौन हो सकता है !”

: ६ :

जैसी कथनी वैसी करनी

आचार्य द्रोण पांडवों को पढ़ाया करते थे । उनकी पाठशाला रोज लगती थी और पांचों पांडव गुरु से शिक्षा प्राप्त करते थे ।

एक दिन गुरुजी ने पढ़ाया, “सच बोलो ।”

उन्होंने अर्जुन से पूछा, “अर्जुन, पाठ याद हो गया ?”

अर्जुन ने कहा, “जीहाँ, याद हो गया—सच बोलो ।”

“अच्छा भीम, तुम बोलो ।”

“जीहाँ, गुरुजी, याद हो गया—सच बोलो ।”

बारी-बारी से उन्होंने नकुल और सहदेव से पूछा और अंत में युधिष्ठिर से । सबको याद हो गया । द्रोण बहुत प्रसन्न हुए ।

दूसरे दिन उन्होंने पढ़ाया, “क्रोध को जीतो ।”

पहले दिन की तरह उन्होंने अर्जुन से पूछा, “क्यों अर्जुन, पाठ याद हो गया ?”

अर्जुन ने कहा, “जीहाँ—क्रोध को जीतो ।”

“क्यों भीम, तुम्हें याद हुआ ?”

“जीहाँ, क्रोध को जीतो ।”

नकुल और सहदेव ने भी पाठ को दोहरा दिया ।

जब युधिष्ठिर की बारी आई तो उन्होंने कहा, “गुरुजी, मुझे पाठ याद नहीं हुआ ।”

द्रोण यह सुनने को तैयार न थे । आश्चर्य में भरकर बोले, “तुम्हें याद नहीं हुआ ?”

“जी, मुझे याद नहीं हुआ ।”

गुरु का स्वर कठोर हो आया, “आखिर इसमें कौनसी बात है, जो तुम्हारी समझ में नहीं आई ?”

“जी, मुझे पाठ याद नहीं हुआ ।”

गुरु ने तेज होकर कहा, “तुम्हारे सब भाइयों को तो याद हो गया, तुम्हें नहीं हुआ । तुमको शर्म आनी चाहिए । अच्छा, कल जरूर याद करके लाना । समझे ।”

१२ : दिव्य जीवन की झांकियां

अगले दिन पाठशाला लगी तो द्रोण ने सबसे पहले युधिष्ठिर से पूछा, “युधिष्ठिर, कल का पाठ याद हुआ ?”

उन्होंने कहा, “जी, नहीं, अभी याद नहीं हुआ ।”

इतना सुनना था कि गुरु का पारा चढ़ गया । बोले, “बुद्धू कहीं के ! तुम्हारे दिमाग में क्या भूसा भरा है ! तुम जब इतनी मामूली-सी बात नहीं समझ पाते तो आगे क्या खाक पढ़ोगे ! तुम दूसरों का समय खराब करते हो । अच्छा, एक दिन का समय और देता हूं । कल याद करके नहीं आये तो खैर नहीं है ।”

अगले दिन फिर वही हुआ । द्रोण के पूछते ही युधिष्ठिर ने कहा, “मुझे पाठ याद नहीं हुआ ?”

फिर क्या था ! द्रोण ने उन्हें अपने पास बुलाया और जोर से कान पकड़ कर पूछा, “याद नहीं हुआ ?”

युधिष्ठिर ने कहा, “नहीं ।”

गुरुजी ने उनके गाल पर कस कर एक चांटा मारा । पूछा, “अब याद हुआ ?”

युधिष्ठिर ने कहा, “जीहां, याद हो गया ।”

द्रोण बोले, “मैं नहीं जानता था कि लातों का देव बातों से नहीं मानता, नहीं तो इतने दिन क्यों खोता ?”

युधिष्ठिर ने कहा, “गुरुजी, यह बात नहीं है । आपने जब पहले दिन पाठ पढ़ाया तो मुझे अपने पर भरोसा नहीं हुआ । आप नाराज हुए, पर मुझे क्रोध नहीं आया । फिर भी मुझे लगा कि हो सकता है, आप गाली दें, तब क्रोध आ जाय । दूसरे दिन आपने गाली दी, तब भी मुझे गुस्सा नहीं आया, पर फिर भी मुझे पक्का विश्वास नहीं हुआ । संभव है, आप मारें तब मुझे क्रोध आ जाय । अभी जब आपने कान खींचा तो मैंने अनुभव किया कि एक परीक्षा और होनी बाकी है । कोई मारे तो गुस्सा आ सकता है । जब

32869

दिव्य जीवन की झांकियां : १३

आपने चांटा लगाया तब भी मुझे गुस्सा नहीं आया तो मैंने समझा कि मुझे पाठ याद हो गया है।”

गुरु के पैरों के नीचे की धरती कांप गई। उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया।

: ७ :

उत्तम क्षमा

हजरत मोहम्मद के एक चचा थे, हुसेन। बड़े आलीशान मकान में रहते थे। कमरों में बढ़िया कीमती कालीन बिछे थे। उनके पास धन की कमी न थी। लोग उनसे थर-थर कांपते थे। कोई उन्हें नाराज नहीं कर सकता था।

एक दिन एक गुलाम उनका खाना मेज पर लगा रहा था। वह जैसे ही रकाबियां लेकर आ रहा था कि चिकने कालीन पर उसका पैर फिसल गया। रकाबियां नीचे गिर गईं और आपस में टकरा कर चूर-चूर हो गईं। कालीन खराब हो गया।

गुलाम घुटने टेक कर वहीं हुसेन के सामने बैठ गया। सिर झुका कर बोला, “मालिक, जो दूसरों पर गुस्सा नहीं करते, वे बड़े होते हैं।”

हुसेन ने कुछ रुक कर कहा, “मैं गुस्सा नहीं हूँ।”

गुलाम बोला, “जिन्हें गुस्सा आता ही नहीं, वे उससे भी बड़े होते हैं।”

हुसेन ने कहा, “तुम ठीक कहते हो।”

गुलाम फिर बोला, “लेकिन जो दूसरों की गलतियों को माफ कर देते हैं, वे सबसे बड़े होते हैं।”

१४ : दिव्य जीवन की झांकियां

हुसेन ने कहा, "मैंने तुम्हें माफ कर दिया। ये लो चार सौ दिरहम। मैंने तुम्हें माफ हो नहीं, आजाद भी कर दिया। जाओ।"

: ८ :

पराई चोट की अनुभूति

नामदेव नाम के एक बड़े सन्त थे। उनके दिल में बड़ी दया थी। एक दिन उनकी मां ने कहा, "बेटा, दवा के लिए थोड़ी-सी ढाक की छाल ले आ।"

नामदेव गये और थोड़ी देर में छाल लेकर आ गये।

इस बात को कई दिन बीत गये। एक दिन नामदेव की मां ने देखा कि उसके बेटे की धोती में खून लगा है। उसने पूछा, "क्यों रे, यह खून कहां से आया?"

नामदेव चुप।

मां ने फिर कहा, "अरे, बोलता क्यों नहीं!"

नामदेव ने धीरे से मुंह खोला, बोले, "मां, उस दिन तुमने ढाक की छाल मंगवाई थी न! मैंने जब पेड़ को काटा तो मुझे लगा कि यह पेड़ तो बोलता नहीं है, देखें काटने पर इसको कैसा लगता होगा। सो मैंने अपनी टांग छील डाली।"

मां का दिल उमड़ आया। उसकी आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे।

: ९ :

मन जीते, जग जीते

सिकन्दर बादशाह का नाम सब जानते हैं। एक बार की बात है। वह कहीं से लौट रहा था। देखता क्या है कि एक पेड़ के नीचे एक फकीर बैठा मस्ती में गा रहा है।

दिव्य जीवन की झांकियां : १५

उसकी मस्ती को देखकर सिकन्दर ने पूछा, “तुम कौन हो ?”

फकीर ने जवाब दिया, “मैं दुनिया का बादशाह हूँ।”

यह सुनकर सिकन्दर को बड़ा अचरज हुआ। मन-ही-मन बोला, “अरे, बादशाह तो मैं हूँ। लाखों रुपया खर्च करता हूँ, इतनी बड़ी फौज रखता हूँ, कसकर मेहनत करता हूँ। यह फकीर दुनिया का बादशाह कहां से हो गया !”

उसने फकीर से पूछा, “क्यों भाई, तुमने ऐसा क्या किया है, जो दुनिया के बादशाह बन गये ?”

फकीर जोर से हँस पड़ा। बोला, “तुमने सुना नहीं—‘मन जीते, जग जीते।’ जिसने मन को जीत लिया, उसने दुनिया को फतह कर लिया।”

इतना कह कर उसने फिर मस्ती से तान छेड़ दी।

: १० :

दान का आनंद

एक राजा थे। वह बड़े उदार थे। दानी तो इतने कि खाने-पीने की जो भी चीजें होतीं, अक्सर भूखों को बांट देते और स्वयं पानी पीकर रह जाते।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि उन्हें कई दिन तक भोजन न मिला। उसके बाद मिला तो थाल भर कर मिला। उसमें से भूखों को बांट कर जो बचा, उसे राजा खाने को बैठे कि एक ब्राह्मण आ गया।

बोला, “महाराज, मुझे कुछ दीजिये।”

राजा ने थाल में से थोड़ी-थोड़ी चीजें उठाकर उसे दे दीं। फिर जैसे ही खाने को हुए कि एक शूद्र आ गया। राजा ने खुशी-

१६ : दिव्य जीवन की झांकियां

खुशी उसे भी कुछ दे दिया। उसके जाते ही एक चाण्डाल आ गया। राजा ने बचा-बचाया सब उसे दे दिया। मन-ही-मन सोचा, कितना अच्छा हुआ, जो इतनों का काम चल गया। मेरा क्या है, पानी पीकर मजे में अपनी गुजर कर लूंगा।

इतना कह कर वह जैसे ही पानी पीने लगे कि हांफता हुआ एक कुत्ता वहां आ गया। गर्मी से वह बेहाल हो रहा था और प्यासा था। राजा ने झट पानी का बर्तन उठाकर उसके सामने रख दिया। कुत्ता सारा पानी पी गया।

राजा को न खाना मिला, न पानी, पर उसे जो मिला, उसका मूल्य कौन आंक सकता है !

: ११ :

सफलता की कुंजी

एक बार पाण्डवों के गुरु द्रोण ने अपने शिष्यों की परीक्षा ली। सामने पेड़ पर एक चिड़िया थी। द्रोण ने कहा, “इस चिड़िया की आंख में निशाना लगाना है। युधिष्ठिर, सबसे पहले तुम बताओ कि तुम्हें क्या-क्या दिखाई दे रहा है ?”

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, “मुझे पेड़ दिखाई देता है, चिड़िया दिखाई देती है और आप दिखाई देते हैं।”

गुरु ने यही सवाल भीम, नकुल और सहदेव से पूछा और सबने वही जवाब दिया, जो युधिष्ठिर ने दिया था।

अर्जुन सब से बाद में खड़े थे। द्रोण ने पूछा, “अच्छा अर्जुन, अब तुम बताओ।”

अर्जुन ने कहा, “गुरुजी, मुझे तो बस चिड़िया की आंख दिखाई देती है।”

दिव्य जीवन की शांक्तियाँ : १७

गुरुजी बोले, “तुम पास हुए। तुम्हारे भाई फेल हो गये। जो अपने ध्येय के सिवा और कुछ नहीं देखता, वही कुछ कर सकता है।”

: १२ :

निन्यानबे का फेर

एक आदमी था। वह और उसकी स्त्री अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में चैन से रहते थे। आदमी दिन भर कस कर मेहनत करता और जो भी उसे मिलता, उसमें अपना खर्च चला लेता। वह सीधा-सादा ईमानदार मजदूर था। उसे न ज्यादा कमाने की इच्छा थी, न बड़ा आदमी बनने की। वह और उसकी पत्नी दोनों बड़े सुखी थे।

उनके पड़ोस में एक धनी आदमी रहता था। वह हमेशा कमाई के चक्कर में रहता था। इसलिए उसे हर घड़ी चिन्ताएँ घेरे रहती थीं। आनन्द क्या होता है, इसका उसे पता भी नहीं था।

एक दिन एक साधु उधर से निकला। धनी आदमी ने उसे अपने यहां बुलाकर कहा, “महाराज, मैं बहुत परेशान हूँ। मुझे उससे बचने का रास्ता बताइये।”

साधु बोला, “तुम्हारी चिन्ताओं और परेशानियों का कारण तुम्हारी धन-दौलत है। जरा अपने गरीब पड़ोसी को देखो। उसके पास पैसे के नाम पर कुछ भी नहीं है, इससे उसे चिन्ता नहीं व्यापती और उसका चेहरा फूल की तरह खिला रहता है। हाथ-पैर की मेहनत से जो कमाई होती है, उसी में मस्त रहता है और चैन की बंसी बजाता है। ऐसा सुख तुम्हारे नसीब में कहां है?”

१८ : दिव्य जीवन की झांकियां

धनी ने कहा, “महाराज, बात ऐसी नहीं है। मेरा दुख इसीलिए नहीं है कि मेरे पास पैसा है और पड़ोसी इसीलिए सुखी नहीं है कि उसके पास पैसा नहीं है।”

साधु बोला, “अच्छा, मेरी बात की तुम परीक्षा कर लो।”

इसके बाद अगले दिन धनी आदमी ने साधु की सलाह से एक कपड़े में निन्यानबे रुपये बांध कर उस गरीब के घर में फेंक दिये।

इसका नतीजा जो होना था, वही हुआ। अगले दिन उस गरीब आदमी के घर में चूल्हा नहीं जला। दिन भर की मजदूरी से जो पैसा मिलता था, उससे खाने-पीने का सामान जुटा कर वे खुशी-खुशी भोजन बनाते थे और खाते थे, लेकिन उस दिन चूल्हे में आग तक न जली और वे दोनों भूखे सो गये।

दूसरे दिन सवेरे ही साधु पैसे वाले को साथ लेकर उस गरीब आदमी के घर गया और पूछा, “क्यों भाई, कल तुम्हारे यहाँ खाना क्यों नहीं बना?”

गरीब आदमी ने सच-सच सारा हाल कह दिया। बोला, “महाराज, बात यह है कि कल तक जो कुछ पैसे कमा कर लाया करता था, उनसे आटा-दाल खरीद कर पकवाता था। लेकिन कल हमारे आंगन में एक पोटली पड़ी मिली, जिसमें निन्यानबे रुपये थे। सोचा कि इनमें एक रुपया और मिल जाय तो पूरे सौ हो जायँ। इसलिए हमने तय किया है कि कुछ समय तक एक-एक दिन छोड़कर खाना खाया करेंगे। इस तरह एक हफ्ते में एक रुपया बच जायगा और हमारे पास पूरे सौ रुपये हो जायेंगे।”

साधु ने मुस्करा कर धनी की ओर देखा। फिर बोला, “मैंने जो कहा था, वह ठीक था न। निन्यानबे मिलने पर आदमी सौ की इच्छा करता है और जिसे सौ मिल जाते हैं, वह हजार की इच्छा करने लगता है। यही चिन्ता और दुख की जड़ है।”

: १३ :

गुस्से की दवा

एक स्त्री थी। वह बड़ी क्रोधो थी। जरा-सी कोई बात होती कि उसका पारा चढ़ जाता और वह कहनी-अनकहनी सब तरह की बातें कह डालती।

उसके इस स्वभाव से सारा घर और मोहल्ला हैरान था। लोग उससे बात करने में घबराते थे। वह स्त्री भी अपने से बहुत परेशान थी। जब उसका गुस्सा उतरता था तो उसे बड़ा पछतावा होता था, लेकिन फिर भी वह अपनी आदत से लाचार थी।

एक दिन एक साधु उस स्त्री के घर आया। स्त्री ने कहा, “महाराज, मैं बहुत ही दुखी हूँ। मुझे गुस्सा बहुत आता है। मैं उस पर काबू नहीं कर पाती।” साधु ने कहा, “कोई बात नहीं है। मेरे पास गुस्से को दूर करने की बहुत बढ़िया दवा है। कल मैं आऊंगा तो लेता आऊंगा।”

अगले दिन साधु आये तो एक शीशी में दवा लेते आये। उन्होंने कहा, “यह दवा इसी शीशी से पीई जाती है। जब तुम्हें गुस्सा आवे, इस शीशो को मुंह में लगा कर उस समय तक दवा पीतो रहना जबतक कि गुस्सा दूर न हो जाय। मैं सात दिन बाद आऊंगा।”

इतना कहकर साधु चले गये। स्त्री ने उनकी दवा पीना शुरू किया। जैसे ही उसे गुस्सा आता कि बोतल को मुंह से लगा लेती।

सात दिन बाद साधु आये तो स्त्री उनके पैरों में गिर पड़ी। बोली, “महाराज, आपने मुझे बचा लिया। ऐसी शक्ति या दवा दी कि मेरा गुस्सा जाने कहां चला गया। कृपा कर के यह बता दीजिये कि आपने यह दवा क्या दी थी?”

साधु ने हँस कर कहा, “पगली, बोतल में कुछ नहीं था।

२० : दिव्य जीवन की झांकियां

पानी था। बोतल के मुंह में आ जाने से तुम बोल नहीं सकती थीं और गुस्सा जीतने की सबसे अच्छी दवा मुंह बंद कर लेना है।”

: १४ :

सवाल का जवाब

एक दिन संत एकनाथ से एक आदमी मिलने आया। उसने कहा, “महाराज, आपका जीवन कितना सादा है। आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं होते। सब पर प्रेम करते हैं। ऐसा क्यों है?”

एकनाथ ने कहा, “इस सबको छोड़ो। लेकिन सुनो, मुझे एक बात मालूम हुई है।”

उस आदमी ने पूछा, “क्या?”

एकनाथ बोले, “सात दिन के भीतर तुम मर जाने वाले हो।”

इतना सुनना था कि वह आदमी हैरान हो गया। एकनाथ ऊंचे संत थे। उनकी बात झूठी कैसे मानी जा सकती थी।

वह आदमी दौड़ा-दौड़ा घर आया। उसे कुछ सूझता ही नहीं था। क्या करे, क्या न करे। परेशानी के मारे वह बीमार पड़ गया।

इस तरह छः दिन बीत गये। सातवें दिन एकनाथ उस आदमी के घर आये। बोले, “कहो भई, क्या हाल है?”

उसने कहा, “अब क्या है। अब तो एक दिन बाकी रहा है।”

एकनाथ ने पूछा, “क्यों, इन दिनों में कितना पाप किया?”

“आप पाप की बात कहते हैं।” वह बोला, “मुझे तो हर घड़ी मौत सामने खड़ी दिखाई देती है। ऐसे में पाप कौन कर सकता है!”

एकनाथ ने कहा, “तुमने मुझसे जो सवाल किया था, उसका जवाब मिल गया न?”

: १५ :

सब जन एक समान

एक ब्राह्मण गंगा नहा कर लौट रहा था। रास्ते में एक चाण्डाल आ गया। ब्राह्मण ने उससे कहा, “एक ओर को हट।”

चाण्डाल ने उसकी ओर देखा। बोला, “तुम किसे हटाना चाहते हो? यह देह तो गंदगी की खान है। लेकिन आत्मा सबकी शुद्ध है। ऐसी हालत में बताओ, कौन ऊंच है, कौन नीच?”

ब्राह्मण कुछ कहे कि उससे पहले ही चाण्डाल बोल उठा, “अच्छा, गंगा-जल के चांद में और हमारी पोखर के चांद में कोई अंतर है? नहीं है तो ब्राह्मण और अछूत का भ्रम तुम्हारे मन में कैसे पैदा हुआ?”

ब्राह्मण की आंखें खुल गईं। वह बोला, “तुम ठीक कहते हो। मैं भूल में था। यह देह तो किसी की नहीं रहती। एक दिन मिट्टी में मिल जाती है। पर आत्मा तो सबकी एक-सी है। वह कभी नहीं मरती।”

चाण्डाल ने फिर कहा, “महाराज, ब्राह्मण और अछूत कोई जनम से नहीं होता, यह सब भेदभाव तो आदमी का बनाया हुआ है।”

ब्राह्मण की आंखों से भ्रम का पर्दा हट गया और वह सबको बराबर समझने लगा।

: १६ :

दिल की पवित्रता

एक अमीर आदमी था। वह तीर्थ करने निकला। उसके साथ एक नौकर था। बड़े-बड़े सब तीर्थ करके वे दोनों घर लौटे। मालिक खुश था।

२२ : दिव्य जीवन की झांकियां

एक दिन नौकर ने एक सब्जी बनाई। मालिक ने मुंह में रखते ही कहा, “अरे, यह तुमने क्या सब्जी बनाई है? यह तो बड़ी गंदी है। इसमें बदबू आती है।”

नौकर ने कहा, “आप इसे गंदी कहते हैं। ये वे आलू हैं, जिन्हें हम अपने साथ तीर्थों में ले गये। मैंने इन्हें गंगा में स्नान कराया, जमुना में स्नान कराया, काबेरी में स्नान कराया। आप इन्हें गंदा कैसे कह सकते हैं। ये आलू तो बड़े पवित्र हैं।”

मालिक समझ गया कि नौकर ने आज मुझे सबक सिखाया है। यह कहता है कि तीर्थों में स्नान करने से ही कोई पवित्र नहीं हो जाता। असली बात तो दिल का पवित्र होना है।

: १७ :

अवसर

किसी चित्रशाला में एक तस्वीर लगी थी। उस तस्वीर का चेहरा बालों से ढका था और उसके पैरों में पंख लगे थे।

एक आदमी उस चित्रशाला में आया। उसने तस्वीर को देखा, पर उसकी समझ में नहीं आया कि आखिर कलाकार ने उसके चेहरे को क्यों छिपा दिया है और पैरों में पंख क्यों लगा दिये हैं।

संयोग से कलाकार वहां मौजूद था। उसने उससे पूछा, “क्यों भाई, यह तस्वीर किसकी है?”

कलाकार ने कहा, “यह तस्वीर अवसर की है।”

“तुमने इसका मुंह क्यों ढक दिया है?”

कलाकार ने जवाब दिया, “इसलिये कि जब यह लोगों के पास आता है तो वे इसे पहचान नहीं पाते।”

“और इसके पैरों में पंख क्यों लगा दिये हैं ?”

कलाकार ने कहा, “इसलिये कि अवसर बड़ी तेजी से चला जाता है और एक बार गया कि फिर उसे कोई पा नहीं सकता।”

: १८ :

लड़ाई में भी सचाई

किसी जमाने में खलीफा उमर का किसी से धर्म-युद्ध चल रहा था। दोनों बड़े मजबूत थे। देर तक जूझते रहे। अंत में लगा कि खलीफा की जीत हो जायेगी। वह उस आदमी की छाती पर चढ़ बैठे, उन्होंने तलवार निकाल ली और जैसे ही उस पर वार करने को थे कि नीचे वाले ने उनके मुंह पर थूक दिया।

उसका ऐसा करना था कि खलीफा ने झट तलवार म्यान में कर ली और उसकी छाती पर से उतर कर नीचे आ गये।

उनके साथियों ने कहा, “खलीफा, यह आपने क्या किया? आपकी तो फतह हो रही थी। आपको उसे खत्म कर देना चाहिए था। हाथ में आये को आपने यों क्यों छोड़ दिया?”

खलीफा ने उत्तर दिया, “बात यह थी कि जिस समय उस आदमी ने मेरे ऊपर थूका, मुझे गुस्सा आ गया। गुस्सा आ जाने से युद्ध धर्मयुद्ध नहीं रहा। ऐसी हालत में उस पर वार नहीं कर सकता था। सो मैंने उसे छोड़ दिया।”

खलीफा के साथी उनका मुंह ताकते रह गये। लड़ाई में सचाई का ध्यान रखना उन जैसे का ही काम था।

: १९ :

रस्सा काट दिया

मराठों के इतिहास की एक घटना है। मराठों ने सिंहगढ़ पर हमला किया और गोह की कमन्द के सहारे वे किले पर चढ़ गये। संयोग से लड़ाई में तानाजी मारे गये। इससे मराठों की सेना में भगदड़ मच गई और वह भागकर उसी रस्से से नीचे उतरने को तैयार हो गई, जिससे ऊपर चढ़ कर आयी थी।

तानाजी के छोटे भाई सूर्याजी ने यह देखा तो उन्होंने उस रस्से को काट दिया और चिल्ला कर कहा, “बहादुरो, कहां जाते हो ! रस्सा तो मैंने काट डाला।”

मराठों की सेना ने यह देखा तो बड़ी हैरान हुई। उसके भागने का रास्ता ही बन्द हो गया था। तब उसने सोचा कि अब हम भागें या लड़ें, दोनों हालत में मरना ही होगा। ऐसा है तो भागें क्यों ? लड़कर क्यों न मरें !”

इतना सोचते ही सेना में खोई हिम्मत फिर से आ गई। वह बहादुरी से लड़ाई में जुट गई। खूब लड़ी और अन्त में जीत मराठों की हुई। सिंहगढ़ उनके हाथ में आ गया।

यदि सूर्याजी ने रस्सा न काटा होता तो मराठों का इतिहास कुछ और ही होता।

: २० :

विचारों की महिमा

एक कल्पवृक्ष था। उसके नीचे बैठ कर आदमी के मन में जो बात आती, वह झट पूरी हो जाती।

एक दिन एक आदमी उसके नीचे आकर बैठा। उसे बड़े जोर

की प्यास लगी थी। उसके मन में आया कि अगर यहां पीने को ठण्डा पानी मिल जाता तो बड़ा अच्छा होता। विचार आने की देर थी कि एक घड़ा ठण्डा पानी आगया। उस आदमी ने जी भर कर पानी पी लिया।

थोड़ी देर में उसे भूख लगी। उसने सोचा कि अगर यहां खाना मिल जाय तो कितना अच्छा हो।

इतना सोचते ही भोजन से भरी थाली आ गई। उस आदमी ने डटकर भोजन किया। पेट तन कर भर गया तो उसे आलस आने लगा। वह सोचने लगा कि अगर यहां सोने का कुछ प्रबन्ध हो जाय तो वह थोड़ी नींद ले ले।

तत्काल एक पलंग आ गया। वह उस पर लेट गया।

अचानक एक नया विचार उसके मन में उठा यह सुनसान जगह है। अगर कोई भूत आ गया तो मुझे खा जायगा।

इतना सोचना था कि भूत आ गया और उसे खा गया।

विचारों की बड़ी महिमा है। हमें चाहिये कि अच्छे विचार ही मन में आने दें।

: २१ :

“मैं पेड़ से गया-बीता थोड़ा हूं।”

महाराजा रणजीत सिंह का नाम कौन नहीं जानता। वह जितने बड़े राजा थे, उतने ही बड़े इंसान थे। दूसरों की दिल खोलकर मदद करते थे।

एक बार उनके सिर में मिट्टी का एक ढेला आकर लगा। राजा का सिर चकरा गया। जब उन्हें होश आया तो देखा कि सिपाही एक बुढ़िया को पकड़े खड़े हैं।

२६ : दिव्य जीवन की झांकियां

राजा ने पूछा, “क्यों, क्या बात है?”

सिपाहियों ने कहा, “इसने आपके ढेला मारा है।”

बुढ़िया ने गिड़गिड़ा कर कहा, “महाराज, मैंने ढेला आपके नहीं मारा।”

राजा बोला, “तो फिर?”

बुढ़िया ने रोते-रोते कहा, “राजन् ! मैं अपने भूखे बच्चे के लिये पेड़ से फल तोड़ रही थी। मेरा हाथ चूक गया और ढेला आपके लग गया। आप मुझे माफ करें।”

सिपाही उसे डाटने लगे। राजा ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने बुढ़िया को बहुत से रुपये देते हुए कहा, “माई, ये रुपये लो। मैं पेड़ से गया-बीता थोड़ा हूँ। लोग पेड़ में पत्थर मारते हैं, पर वह बदले में फल देता है। माई, तुम जाओ और खुश रहो।”

बुढ़िया ने जी भर कर राजा को असीस दी और चली गई।

: २२ :

संत की सिखावन

महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े संत हुए हैं। उनका नाम था एकनाथ। बड़े ऊँचे दर्जे के आदमी थे। सबसे प्यार से बोलते थे और जिसकी जो भलाई उनसे हो सकती थी, करते थे। उनका नियम था कि रोज नदी में नहाने जाया करते थे।

नदी के पास एक आदमी रहता था। वह छोटी जाति का था। एकनाथ की धर्म में इतनी श्रद्धा देखकर वह उनसे चिढ़ने लगा।

एक दिन जब एकनाथ नहा कर लौटने लगे तो उसने उनपर कुल्ला कर दिया। एकनाथ मुस्कराये और नदी में फिर नहा आये।

इसके बाद तो वह आदमी रोज करता क्या कि जैसे ही वह नहाकर आते, उन पर कुल्ला कर देता। पर एकनाथ तनिक भी न झुंझलाते। मुस्करा कर उसकी ओर देखते और फिर नहा कर चले जाते।

पर एक दिन उस आदमी ने हृद कर दी। उसने बार-बार उन पर कुल्ला किया। वह देखना चाहता था कि आखिर वह कबतक मुस्कराते हैं। जब एक सौ आठवीं बार उसने कुल्ला किया तब भी एकनाथ मुस्कराते ही रहे। इस पर उस आदमी को अपने किये पर बड़ी शर्म आई। वह उनके पैरों पर गिर पड़ा।

एकनाथ ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। प्यार से बोले, “भैया, तुम बड़े अच्छे हो। रोज मुझे दो बार गोदावरी-मैया में नहाने का पुण्य मिलता था, आज एकसौ आठ बार मिल गया।”

: २३ :

भूखे का उपदेश

एक बार गौतम बुद्ध कहीं ठहरे हुए थे। उनके शिष्य इधर-उधर जाते थे और उनके उपदेश लोगों को सुनाते थे।

एक दिन एक शिष्य कहीं गया। वहां उसे एक आदमी मिला। उसे उसने अपने स्वामी का उपदेश सुनाया, लेकिन उसने सुना ही नहीं। शिष्य ने उसे फिर समझाया, फिर भी उस पर कोई असर न हुआ। अंत में निराश होकर शिष्य बुद्ध के पास लौट आया। बोला, “भन्ते, अबतक मुझे जितने लोग मिले हैं, सबने आपका उपदेश बड़े ध्यान से सुना है, लेकिन आज एक आदमी ऐसा मिला जिसने आपकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया।”

बुद्ध ने कहा, “अच्छा, कल मैं वहां चलूंगा।”

२८ : दिव्य जीवन की झांकियां

अगले दिन बुद्ध वहां गये। देखा, वह आदमी बुरी दशा में है। कई दिन का भूखा है।

बुद्ध ने शिष्य से कहा, “जाओ, इसके लिए कहीं से बढ़िया भोजन लाओ।”

थोड़ी देर में शिष्य खाना लेकर वहां आया। बुद्ध ने बड़े प्यार से उस आदमी को भोजन कराया। जब वह भोजन कर चुका तो उन्होंने शिष्य से कहा, “अब चलें।”

दोनों वहां से चल दिये। रास्ते में शिष्य ने पूछा “महाराज, आप तो इसे उपदेश देने आये थे। आपने इसे खाना खिलाया, पर उपदेश कुछ भी नहीं दिया !”

बुद्ध ने कहा, “वत्स, भूखे का सबसे बड़ा उपदेश उसका खाना है। आज का इसका उपदेश यही था।”

: २४ :

बहादुर कौन ?

एक बार कालेज के दो लड़कों में बड़े जोर की लड़ाई हो गई। पहले गाली-गलौज हुई, फिर मारपीट और उतने पर भी उन्हें संतोष न हुआ तो दोनों अपने प्रिंसीपल के पास गये। एक ने कहा, “यह बड़ा शैतान है। मुझे क्या समझ रक्खा है इसने।”

दूसरे ने कहा, “यह बड़ा बदमाश है। मैं इसकी वह मुसीबत करूंगा कि याद करेगा।”

प्रिंसीपल बड़ा होशियार था। उसने कहा, “तुम दोनों बड़े बहादुर मालूम होते हो।”

दोनों ने कहा, “जीहां, हम किसी से दबने वाले नहीं हैं।”

दिव्य जीवन की झांकियां : २९

“शाबाश । पर यह बताओ कि बहादुर किसे कहते हैं ?”

एक ने कहा, “ बहादुर वह होता है, जो बहादुरी के काम करता है ।”

प्रिंसीपल “बोले, “तुमने बिल्कुल ठीक कहा ।”

फिर दूसरे से पूछा, “अच्छा, यह बताओ कि बहादुरी के काम आसान होते हैं या मुश्किल ?”

उसने जवाब दिया, “बहादुरी के काम तो हमेशा मुश्किल होते हैं ।”

“ठीक, बिल्कुल ठीक । अच्छा, अब तुम दोनों बताओ कि जब आदमी को गुस्सा आ रहा हो, उसका मुक्का तना हो, जिस पर गुस्सा आ रहा हो, वह सामने खड़ा हो तो उसकी नाक पर मुक्का मार देना आसान है, या मुक्के को खींचकर अपनी जेब में रख लेना ?”

दोनों ने कहा, “मुक्का मार देना आसान है, खींचकर जेब में रखना बड़ा कठिन है ।”

प्रिंसीपल बोले, “तुमने अभी कहा कि तुम दोनों बहादुर हो । तुम क्या करोगे ? मुक्का मारोगे या उसे खींचकर जेब में रक्खोगे ?”

दोनों लड़के लज्जित हो कर चले गये ।

: २५ :

दूर की सोचने वाला

एक आदमी था । वह गांव में रहता था और खेती-बारी करता था । उसके चार लड़के थे । जब वह आदमी बूढ़ा हुआ तो उसने अपना काम लड़कों को सौंप दिया और स्वयं घरबार के झंझटों से अलग हो गया ।

३० : दिव्य जीवन की झांकियां

उसके पास पैसा था, पर उससे भी बड़ी बात यह थी कि उसका जीवन सादा और खरा था। गांव के लोग उसका बड़ा मान करते थे।

एक दिन लड़कों ने देखा कि उनके बाप गांव में घूम-घूमकर आम की गुठलियां इकट्ठी कर रहे हैं। उन्हें बड़ा बुरा लगा। जूठे आमों की गन्दी गुठलियां इकट्ठा करना कोई अच्छा काम थोड़े ही है। उन्होंने पिता से कहा, “आप यह क्या कर रहे हैं?”

पिता ने कोई जवाब नहीं दिया। पर उनका वह काम रुका नहीं, चलता ही रहा। दिन में जब भी उनका मन होता, घर से निकल पड़ते और जहां भी उन्हें आम की गुठली पड़ी दिखाई देती, उसे उठा लाते।

लड़कों को बड़ा गुस्सा आता। वह झुंझलाकर कहते, “पिताजी, आपको यह हो क्या गया है। सारा गांव आप पर हँसता है।, तरह-तरह की बातें करता है। आप ऐसा मत कीजिये।”

पर पिता फिर भी नहीं माने, जबतक जीये, उन्होंने न लड़कों की बात की चिंता की, न गांव-वालों की हँसी की। थोड़े दिनों में लोगों ने समझ लिया कि बुढ़े की अक्ल सठिया गई है, वह पागल हो गया है और उन्होंने उनका मजाक उड़ाना बन्द कर दिया। लड़कों ने भी पिता की ओर से मुंह फेर लिया।

आखिर एक दिन पिता की मृत्यु हो गई!

कुछ ही दिनों के बाद लोगों ने देखा कि गांव के चारों ओर आम के हरे-भरे बगीचे खड़े हो गये!

तब लोगों ने समझा कि वह बूढ़ा पागल नहीं था, वह दूर की सोचने वाला था!

: २६ :

हमारी भूमि और हम

एक महिला रेल से कहीं जा रही थीं। देखने में वह बड़ी भली और भोली लगती थीं। उनकी आंखों में एक प्रकार की चमक थी और उनके चेहरे पर प्यार का भाव झलकता था।

यह महिला खिड़की के पास बैठी थीं। उनके पास एक झोला था। वह उस झोले में हाथ डालती थीं और हाथ को खिड़की के बाहर ले जाती थीं।

सामने की सीट पर बैठे एक आदमी का ध्यान उनकी ओर गया। उसने देखा कि वह महिला बार-बार झोले में हाथ डालती हैं और बार-बार खिड़की के बाहर ले जाती हैं। आखिर वह कर क्या रही हैं !

उनका यह सिलसिला जब लगातार चलता रहा तो उस आदमी से न रहा गया। वह उठकर उनके पास गया और बोला, “बहनजी, मैं बड़ी देर से देख रहा हूँ कि आप अपने हाथ को झोले में डाल कर बार-बार खिड़की के बाहर ले जाती हैं। आपके झोले में क्या है और आप यह कर क्या रही हैं ?”

मुसाफिर की इस बात पर महिला मुस्करा उठीं। बोलीं कुछ नहीं। उस आदमी का कुतूहल और बढ़ा और उसने अपने सवाल को फिर दोहराया।

बड़ी ममता से उसकी ओर देखते हुए उन महिला ने कहा, “भैया, मेरे इस झोले में रंग-विरंगे सुन्दर फूलों के बीज हैं। मैं उन्हें खिड़की के बाहर बिखेरती जाती हूँ।”

उस आदमी का अचरज और बढ़ा। उसने पूछा, “किस लिए ?”

३२ : दिव्य जीवन की झांकियां

उसके इस सवाल पर वह महिला कुछ गंभीर हो उठीं। सोचती-सी बोलीं, “अपनी भूमि को सुन्दर बनाना हम सबका काम है। मैं बीज इसलिए बोती हूँ कि इनमें से बहुत से जम जाते हैं और फूल और महक देते हैं। उनसे हमारी प्यारी भूमि की शोभा बढ़ती है।”

महिला बात करती रहीं, पर उनका हाथ अपना काम करता रहा। उस आदमी का सिर अचानक उनके सामने झुक गया। उन महिला के इस सत्कार्य से मीलों भूमि नाना प्रकार के फूलों से लहलहा उठी।

अच्छे विचारों और अच्छे कामों के बीज हम सबको इस तरह बिखेरते रहना चाहिए।

: २७ :

दिवाली की नई रोशनी

दो लड़के थे। एक का नाम था रामू, दूसरे का श्यामू। दोनों एक ही मोहल्ले में रहते थे और एक ही मदरसे में पढ़ते थे। रामू के पिता बड़े गरीब थे, लेकिन वह पढ़ने में बहुत होशियार था। अपनी कक्षा में हमेशा अव्वल आता था। श्यामू के पिता अमीर थे; पर वह पढ़ने में बड़ा मामूली था। फिर भी दोनों में गहरी दोस्ती थी। रामू को अपनी होशियारी का और श्यामू को अपने धन का गुमान न था।

अचानक एक बार रामू के पिता बीमार पड़ गये। बीमारी काफी दिन चली। घर में पैसे की पहले से ही तांगी थी। बीमारी से और मुसीबत हो गई। खाने तक के लाले पड़ गये। पर श्यामू बड़ा स्वाभिमानी था। कई दिन वह बिना खाये मदरसे चला गया, लेकिन रामू को उसने पता भी नहीं लगने दिया।

Sri Pratap Singh

दिव्य जीवन की सांक्रिया : ३३

इसी बीच दिवाली आई। इस त्योहार पर रामू और श्यामू एक-दूसरे के घर जाया करते थे। दोनों साथ-साथ दीये जलाते थे और साथ-साथ पटाखे छोड़ते थे। श्याम को थोड़ी चिन्ता हुई कि इस बार क्या होगा? पर उसने हिम्मत नहीं हारी। घर में पुराने कण्डील, लालटेन आदि चीजें पड़ी थीं। उन्हें निकाला, साफ किया। एक-दो को फाड़कर उनके रंग-बिरंगे कागज से फटे कण्डील की मरम्मत की। पुराने दीये इकट्ठे किये, उन्हें धोकर साफ किया और दीवाली की रात को उसने अपने घर में अंधेरे के नाम भी न रहने दिया।

रात को रामू आया तो श्यामू के घर की रोशनी देखकर बहुत खुश हुआ। वह अपने साथ तरह-तरह के पटाखे और फुलझड़ियाँ लाया था। पर श्यामू ने उनका इस्तेमाल करने से इन्कार कर दिया। रामू ने आग्रह किया तो उसने कहा, “रामू, अपने इस त्योहार पर हमें रोशनी तो जरूर करनी चाहिए, लेकिन पटाखे नहीं छोड़ने चाहिए, इसमें पैसा बेकार जाता है। हमारे देश को जरूरी चीजों के लिए पैसा चाहिए। अगर हम सब पटाखे आदि चीजों को छोड़ दें तो कितना पैसा बच जायगा।”

श्यामू की बात रामू की समझ में आ गई। उसने कहा, “अब तो वे चीजें आ ही गई हैं। इस बार इन्हें छुड़ा लें। आगे से नहीं लावेंगे।”

श्यामू ने कहा, “नहीं, अच्छी बात पर फौरन अमल करना चाहिए।”

इसके बाद रामू ने सारे पटाखे मोहल्ले के लड़कों को बांट दिये, स्वयं एक भी नहीं छुड़ाया।

दोनों मित्रों को बड़ी प्रसन्नता हुई उन्हें लगा, दीवाली की रोशनी कई गुनी बढ़ गई है।

३४ : दिव्य जीवन की झांकियां

: २८ :

घर बाहर का भेद

एक लड़का था। वह पाठशाला में पढ़ने जाया करता था। एक दिन उसके गुरु ने पढ़ाया—“आदमी को दूसरों पर दया करनी चाहिए। दुखियों की मदद करनी चाहिए।”

बालक घर लौटा तो देखता क्या है कि उसके पिता एक गिड़-गिड़ाते भिखारी को फटकार कर घर से भगा रहे हैं।

दूसरे दिन गुरुजी ने पढ़ाया—“झूठ बोलना पाप है।”

बालक घर लौटा तो उसने देखा कि उसके भाई पिताजी से कुछ झूठी बातें कह रहे हैं।

तीसरे दिन उसने पाठशाला में पढ़ा—“आपस में मिल-जुल कर रहना चाहिए।”

बालक ने घर लौट कर देखा कि उसके मां-बाप आपस में लड़ रहे हैं।

अगले दिन वह पाठशाला नहीं गया। पिताजी ने पूछा कि पढ़ने क्यों नहीं गया तो उसने कहा, “गुरुजी अच्छा नहीं पढ़ाते।”

: २९ :

नया वसंत

एक आदमी था। वह जीवन से बड़ा निराश हो गया था। हर घड़ी उदास रहता था। उसे लगता था कि दुनिया में अकेला है। उसे कोई प्यार नहीं करता।

वसंत का मौसम आया। भांति-भांति के फूल खिल उठे।

दिव्य जीवन की झांकियां : ३५

उनकी महक से चारों ओर आनंद छा गया। लेकिन वह आदमी अपने कमरे में ही बंद रहा।

एक दिन अचानक एक लड़की उसके कमरे के किवाड़ खोल कर अंदर आई। उस आदमी को गुमसुम देखकर सहम उठी। बोली, “आप इतने उदास क्यों हैं?”

आदमी ने कहा, “मुझे कोई प्यार नहीं करता। मैं अकेला हूँ।”

लड़की ने कहा, “यह तो बड़ी बुरी बात है कि आपको कोई प्यार नहीं करता, पर यह बताइये कि आप किस-किस को प्यार करते हैं?”

आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया।

लड़की आगे बोली, “आप बाहर आइये। देखिये, आपके दरवाजे पर कितना प्यार बिखरा पड़ा है। आप चाहें तो भर-भर हाथों बटोर सकते हैं।”

इतना कहकर उस लड़की ने उस आदमी का हाथ पकड़ा और कमरे से बाहर लाकर हँसते-विहँसते फूलों के बीच उसे खड़ा कर दिया।

बोली, “आप प्यार चाहते हैं। लीजिये, जितना चाहिए, इनसे ले लीजिये। देखिये, ये कितने बढ़िया साथी हैं। खुशी-खुशी प्यार देते हैं, पर बदला नहीं चाहते। क्यों, है न?”

इन शब्दों को सुनकर उस आदमी का जैसे नया जन्म हो गया। उसके मन की गांठ खुल गई। जीवन में वसंत हिलोरें लेने लगा।

: ३० :

होली का मिलन

दो बालक थे। एक का नाम था प्रेम और दूसरे का हेम। दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। दोनों में बड़ा प्यार था।

३६ : दिव्य जीवन की झांकियां

लेकिन एक दिन किसी बात पर दोनों में तनातनी हो गई। बात छोटी थी, पर दोनों का पारा चढ़ गया और उस दिन से उन्होंने एक-दूसरे से बोलना बंद कर दिया। दोनों बड़े समझदार थे, पर उनमें कुछ ऐसी जिद पैदा हो गई कि वे अलग रहने लगे।

कुछ दिन बाद होली आई। मोहल्ले के लड़कों ने मिल कर चौराहे पर होली रक्खी। जो जिसके हाथ पड़ा, उठा लाया। प्रेम ने और हेम ने भी दूसरे बच्चों की मदद की, लेकिन वे एक-दूसरे के सामने नहीं आये।

होली की शाम को होली में लकड़ियों और कण्डों का ढेर लग गया। रात को उसमें आग लगाई गई। सारे मोहल्ले के बच्चे और बड़े वहां इकट्ठे हो गये।

प्रेम और हेम भी वहां आये, पर एक इस छोर पर खड़ा था, दूसरा उस छोर पर। वे दोनों होली को जलते देख रहे थे।

देखते-देखते प्रेम को अचानक याद आया। उसने अपनी पुस्तक में पड़ा था कि होली दिलों के मैल को जलाकर राख कर देती है। उसी समय हेम को ध्यान आया कि होली पर दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।

इतना सोचना था कि दोनों का गुस्सा होली में भस्म हो गया और वे दौड़ कर एक-दूसरे से लिपट गये।

होली वैसे तो सबने मनाई, लेकिन उसका जो आनंद प्रेम और हेम को मिला वह निराला था।

: ३१ :

बीमारी का इलाज

एक राजा बहुत बीमार हो गया। दूर-दूर से इलाज करने वाले

आये, लेकिन उसे फायदा नहीं पहुंचा। लोग बड़े दुखी हुए। अब क्या हो ?

अचानक एक साधु आया। उसने राजा को देखा। बोला, “यह तो जरा सी देर में ठीक हो जायंगे। इनको पहनाने के लिये किसी ऐसे धनी की पोशाक लाओ, जो सुखी हो।”

राजा के दीवान ने कहा, “महाराज, यह तो बड़ी आसान बात है।”

राजा के महल से कुछ दूरी पर एक सेठ रहता था। दीवान दौड़ा-दौड़ा उसके यहां पहुंचा। कहा, “सेठजी, राजा को अच्छा करने के लिये किसी पैसे वाले की पोशाक चाहिए, लेकिन साधु ने कहा है कि वह आदमी सुखी हो।”

सेठ ने कहा, “दीवानजी, पोशाक एक नहीं, चार ले जाओ, लेकिन बात यह है कि मैं सुखी नहीं हूं।”

दीवान दूसरे सेठ के यहां पहुंचा। उसने भी वही कहा। दीवान ने रात तक जाने कितने घरों में चक्कर काटे, पर कोई भी सुखी नहीं मिला।

हैरान होकर लौटने लगा तो नदी के उस पार से बांसुरी की तान सुनाई दी। कोई बहुत ही आनंद से बांसुरी बजा रहा था।

दीवान ने सोचा, अब काम बन गया। उसने झट नदी पार की और वहां पहुंचा। देखा, एक नौजवान मस्ती से तान छेड़ रहा है।

वह एक पेड़ की आड़ में बैठा था। चारों ओर गहरा अंधेरा छाया था। दीवान ने वहां पहुंच कर कहा, “आ भाई, तू बड़ा सुखी जान पड़ता है। ला, अपने कपड़े राजा के लिये दे दे।”

नौजवान ने बांसुरी बजाना बंद कर दिया और खूब जोर से

३८ : दिव्य जीवन की झांकियां

हँसा। बोला, “मेरे पास कपड़े हैं कहां। मैं तो बस एक लंगोटी लगाये हुए हूँ।”

निराश होकर दीवान लौट आया। पोशाक नहीं मिली, नहीं मिली।

: ३२ :

तंदुरुस्ती का रहस्य

एक बादशाह था। वह बड़ा ही नेक और मेहरबान था। उसके एक बुजुर्ग किसी दूसरे नगर में रहते थे। वहां कोई इलाज करने वाला नहीं था। इसलिए बादशाह ने अपने हकीम से कहा कि तुम वहां जाओ और उस बुजुर्ग के चेलों का इलाज करो।

हकीम उस शहर में पहुंचा, लेकिन एक दिन बीता, दो दिन बीते, दस दिन बीते, एक भी आदमी उसके पास इलाज के लिए नहीं फटका। हकीम बड़ा परेशान हुआ। वह घर से इतनी दूर लोगों की सेवा करने आया था, पर वहां कोई सेवा लेने वाला ही नहीं था।

जब राह देखते-देखते एक साल निकल गया तो हकीम परेशान होकर बुजुर्ग के यहां गया और बोला, “जनाब, मुझे बादशाह ने आपके चेलों का इलाज करने भेजा है, लेकिन साल भर हो गया, एक भी आदमी इलाज कराने नहीं आया। आखिर ऐसी बात क्या है?”

बुजुर्ग ने जवाब दिया, “हकीम जी, आप मेरे चेलों को जानते नहीं। उनकी आदत है कि जबतक उन्हें जोर की भूख नहीं लगती, खाना नहीं खाते। जब खाते हैं, तब थोड़ी भूख के रहते ही खाना छोड़ देते हैं।”

हकीम ने कहा, “अब मैं समझा कि उन्हें मेरी जरूरत क्यों नहीं पड़ती।”

: ३३ :

विवेक से काम लो

एक दिन गुरु ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि सब नारायण हैं।

शिष्यों ने जपना शुरू कर दिया, “सब नारायण हैं, सब नारायण हैं।”

एक दिन एक शिष्य कहीं जा रहा था। उधर से एक हाथी आया। महावत ने कहा, “रास्ते से हट जाओ।”

लेकिन शिष्य ने सोचा—हाथी नारायण है, मैं भी नारायण हूँ। नारायण को नारायण से क्या डर।

यह सोचकर वह रास्ते से नहीं हटा। हाथी ने आकर उसे सूंड में लपेटा और एक ओर को पटक दिया। शिष्य को बड़ी चोट आयी।

जैसे-तैसे अपने गुरु के पास आकर उसने सारा हाल कह सुनाया।

गुरु हँसे। बोले, “तुम्हारा कहना ठीक है कि तुम नारायण थे, हाथी भी नारायण था, लेकिन तुम यह भूल गये कि हाथी के सिर पर एक तीसरा नारायण बैठा था, जिसने तुमसे हटने को कहा। तुमने उसकी बात नहीं सुनी। इसी से तुम्हें दण्ड मिला। आदमी को विवेक से काम लेना चाहिए।”

४० : दिव्य जीवन की झांकियां

: ३४ :

साधु की सीख

किसी जंगल में एक फकीर रहता था। दूसरे साधु-संतों को वह खिला-पिला सके, इसके लिए एक दिन वह फकीर बादशाह से कुछ धन माँगने गया। बादशाह उस समय नमाज पढ़ रहा था। नमाज के आखीर में बादशाह ने कहा, “हे अल्ला, मुझे दौलत दे।” यह सुनकर फकीर लौटने लगा। बादशाह ने उसे इशारे से रोका। पूछा, “आप लौटे क्यों जा रहे थे?”

फकीर बोला, “मेरे यहाँ मेहमान बहुत आते हैं। उनको खिलाने-पिलाने के लिये कुछ पैसे लेने आया था?”

“तो बिना पैसे लिये क्यों चल दिये?”

फकीर ने कहा, “जब मैंने देखा कि आप खुद दौलत की मांग कर रहे हैं तो मैंने सोचा कि मैं भिखमंगे से भीख क्या मांगू! खुदा से मांगूंगा। बस, यही सोच कर मैं जा रहा था।”

: ३५ :

खरी कमाई

किसी शहर में दो भाई रहते थे। उनमें से एक राजा के यहाँ नौकरी करता था और दूसरा मेहनत करके कमाई से पेट भरता था। राजा के यहाँ नौकरी करने वाला भाई पैसे वाला था और ठाठ से रहता था। मेहनत की कमाई करने वाला भाई गरीब था और तंगी में रहता था।

एक दिन अमीर भाई ने गरीब भाई से कहा, “तुम राजा के यहाँ नौकरी क्यों नहीं कर लेते, जिससे रोज-रोज की मेहनत-मशक्कत से बच जाओ।”

गरीब भाई ने तत्काल उत्तर दिया, “और तुम मेहनत क्यों नहीं करते, जिससे रोज-रोज के नौकरी के अपमानों से बच जाओ ? इंसान की कीमत धन से नहीं होती, खरी कमाई से होती है।”

: ३६ :

बेटे की ममता

एक लड़का था। उसके पिता बचपन में ही गुजर गये थे। मां ने उसका पालन-पोषण किया। बालक पढ़ने में होशियार था। वह आगे बढ़ता गया और पढ़ाई पूरी करके एक ऊँचे ओहदे पर पहुँच गया।

उसको काम-काज बहुत रहता था। अक्सर घर लौटने में देर हो जाती थी। बेचारी मां खाना लिये बैठी राह देखती रहती थी। वह उसे समझाती थी कि बेटा, खाना समय पर खा लिया कर, पर बेटा भी क्या करे। उसे जल्दी फुरसत ही नहीं मिल पाती थी। कभी-कभी मां को बड़ी झुंझलाहट हो जाती थी और बेटे के बड़े हो जाने पर भी उसका हाथ उस पर उठ जाता था।

एक दिन की बात है। बेटा मां से कह गया था कि मैं जल्दी ही घर आ जाऊंगा, लेकिन उस दिन वह लौटा और दिनों से भी ज्यादा देर में। उसके आते ही मां का पारा चढ़ गया और उसने आव देखा न ताव, कस कर उसके मुँह पर एक चांटा मार दिया।

बेटा रोने लगा। उसकी आंखों में आंसू देख कर मां का दिल भर आया। प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, “क्यों, क्या चांटा बहुत जोर से लग गया ?”

४२ : दिव्य जीवन की झांकियां

बेटा थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला, “मां, चांटे से तो मेरे चोट नहीं लगी। पर जब तुम पहले मारती थीं, तो लगता था कि तुम्हारे हाथ में दम है। आज ऐसा लगा कि तुम्हारा हाथ कमजोर पड़ गया है। यह सोच कर मुझे बड़ा दुख हुआ और रोना आ गया।”

मां ने गद्गद होकर बेटे को छाती से लगा लिया।

: ३७ :

चोर साधु बन गया

एक चोर था। वह किसी गांव में चोरी करने गया। धन की खोज में घर-घर घूमा, लेकिन एक पैसा भी कहीं उसके हाथ में न पड़ा। उसने देखा कि हर घर में खाने की चीजें पड़ी हैं। उसने सोचा कि इतना खाना मैं साथ बांध कर तो ले नहीं जा सकता। लाओ, यहीं बैठ कर खा लूं। उसे भूख भी लगी थी।

यह सोच कर वह एक घर में घुस गया और चौके में से खाना निकाल कर खाने लगा।

घर की मालकिन जग रही थी। उसे देखकर बोली, “क्यों भाई, तुम रात में क्यों आये हो? दिन में आये होते तो क्या तुम्हें खाना न देती। मेरे घर में अन्न की कमी नहीं है। ठहरो, मैं तुम्हारे लिए दूध लाये देती हूं।”

स्त्री का इतना कहना था कि चोर पानी-पानी हो गया।

स्त्री आगे बोली, “भाई मेरे, अगर तुम्हारे पास काम न हो, तो मुझे बताओ, मैं तुम्हें काम भी दे दूंगी।”

चोर चोरी करने आया था, पर वहां से साधु बन कर लौटा।

: ३८ :

सुख बाहर नहीं, अंदर है

एक नगर के लोग बड़े दुखी थे । किसी के बच्चा नहीं था तो किसी के बहुत से थे, किसी के पास काम नहीं था, तो कोई काम से पिस रहा था । मतलब यह है कि किसी को कोई दुख था तो किसी को कोई, और सारा नगर परेशान था ।

अचानक एक दिन आकाशवाणी हुई कि लोग अपना-अपना दुख एक गठरी में बांध कर ले जायें और शहर के बाहर अमुक जगह पर पटक कर वहां से सुख बांध लावें ।

लोग बड़े खुश हुए । उन्होंने अपने दुख की गठरी बांधी और और उसे लेकर चल दिये । रास्ते में देखते क्या हैं कि एक साधु बैठा खिलाखिला कर हँस रहा है । लोगों ने कहा, “महाराज, आपको कोई दुख हो तो गठरी में बांधकर ले चलो और फेंक कर सुख ले आओ ।”

लेकिन साधु ने उनकी बात की ओर ध्यान नहीं दिया । उसी तरह हँसता रहा ।

लोग दुख को फेंक कर और सुख को लेकर अपने-अपने घर लौट आये । सारे शहर में सुख का साम्राज्य छा गया ।

लेकिन मुश्किल से दो दिन बीते होंगे कि लोग फिर हैरानी अनुभव करने लगे । उनका पड़ोसी जितना सुखी है, वे उतने सुखी क्यों नहीं हैं ? एक के पास इतना ज्यादा पैसा क्यों हैं ? आदि-आदि बातों ने फिर दुख को बुला लिया ।

पर उन्होंने देखा कि वह साधु उसी तरह मस्त था और उसी तरह हँसता खिलखिलाता था ।

४४ : दिव्य जीवन की झांकियां

वे उनके पास गये और कहा, “महाराज, दुख हमारा पीछा नहीं छोड़ता। लेकिन आप इतने सुखी कैसे हैं?”

साधु बोला, “बात यह है कि तुम लोग सुख बाहर खोजते हो, पर सुख बाहर है कहां? सुख तो अपने अंदर है।”

उस दिन से लोगों के हाथ सुख की कुंजी आ गई।

: ३९ :

सब पर दया

अल्बर्ट श्वाइत्जर जीव दया के महान् पुजारी थे। वह मनुष्यों पर ही नहीं, सारे जीवों पर दया रखते थे।

एक बार वह अपने एक मित्र के साथ कहीं जा रहे थे। वहां सवारी थी नहीं और स्टेशन कुछ दूर था। उन्होंने एक लाठी पर अपना सामान लटकाया और दोनों मित्र लाठी के एक-एक सिरे को अपने कंधे पर रखकर स्टेशन की ओर चल पड़े।

गाड़ी आने में थोड़ा ही समय रह गया था। इसलिए दोनों मित्र बड़ी तेजी से बढ़े जा रहे थे। आगे मित्र थे, पीछे वह।

जब स्टेशन थोड़ी ही दूर रह गया तो उन्होंने और भी तेजी से कदम बढ़ाया।

अचानक मित्र को बड़े जोर से धक्का लगा और पूरा सामान, जो लाठी के बीच में लटका था, करीब-करीब उनके सिर पर आ गया। वह गिरते-गिरते बचे।

उन्होंने घबराकर श्वाइत्जर से पूछा, “क्यों भाई, क्या बात है?”

श्वाइत्जर बोले, “आप मुझे माफ करें। यह देखिये रास्ते

दिव्य जीवन की झांकियां : ४५

में एक कीड़ा पड़ा है। किसी के भी पैर के नीचे दबकर मर सकता है। इसी को बचाने के लिए मैं एक ओर को हुआ तो सन्तुलन बिगड़ गया और सारा बोझ आप पर जा पड़ा। जरा रुक जायं, मैं अभी इस कीड़े को उठा कर एक ओर रख देता हूँ।”

इतना कहकर उन्होंने एक लकड़ी लेकर कीड़े को उस पर चढ़ाया और बड़ी ममता से उठाकर उसे ऐसी जगह रख दिया, जहां किसी का भी पैर नहीं पड़ सकता था।”

उसके बाद दोनों ने दौड़ कर रास्ता पार किया, तब कहीं उन्हें गाड़ी मिली।

: ४० :

बेपढ़ी की सीख

“ओफ़, दर्द के मारे मेरा सिर फटा जा रहा। सारी रात एक मिनट को भी नींद नहीं आई।” हमारी टोली के एक सदस्य ने बड़ी हैरानी के साथ कहा।

दूसरा बोला, “आप सिर की बात कहते हैं! जरा मेरी कमर को तो देखो। न मुझसे बैठा जाता है, न खड़ा हुआ जाता है, न चला जाता है। पता नहीं, आगे की यात्रा कैसे होगी!”

“और यह देखो, “तीसरे ने कराहती आवाज में कहा, “मेरे पैर की उंगलियां कितनी घायल हो गई हैं। जूता पहनना मुश्किल हो गया है और नंगे पैर चला नहीं जाता।” इतना कह कर उसने जूता खोलकर अपना बायां पैर दिखा दिया।

चौथे ने उसे देखते हुए कहा, “वाहजी, आप तो उंगलियों के सारे ही बेहाल हो गये! जरा मेरे पैर के तलवों को तो देखो।

४६ : दिव्य जीवन की झांकियां

कितने बड़े-बड़े छाले पड़े और फूट गये। धरती पर पैर रखना भी दुश्वार हो रहा है।”

बात यह थी कि हमारी दस जनों की टोली, जिसमें चार स्त्रियां और छः पुरुष थे, यमुनोत्री की यात्रा करके गंगोत्री जा रही थी। सत्तर-पिचहत्तर मील पहाड़ों में पैदल चलने के कारण सबका बुरा हाल हो रहा था। मैदान में रहने वालों के लिए पहाड़ी यात्रा वैसे भी भारी पड़ती है।

उत्तरकाशी के पास एक चट्टी पर बैठकर सब अपना-अपना दुखड़ा रो रहे थे। महिलाओं के पैर सूज गये थे और उनकी टांगें जवाब दे गई थीं।

हमारे पास ही एक देहातिन बैठी थी। उम्र तीस-पैंतीस की रही होगी। बड़े सहज भाव से मैंने उससे पूछा, “कहो बहन, तुम्हारा क्या हाल है?”

मेरे इस प्रश्न पर वह कुछ सहमी, फिर बोली, “भैया, तीरथ में दुख सहा जाता है, कहा नहीं जाता।”

हम सब उसके मुस्कराते चेहरे को देखते रह गये और हमारी पीड़ा एक क्षण में जाने कहां गायब हो गई!

: ४१ :

क्रोध चाण्डाल होता है

एक पंडितजी महाराज क्रोध न करने पर उपदेश दे रहे थे। कह रहे थे, “क्रोध आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है। उससे आदमी की बुद्धि नष्ट हो जाती है और जिस आदमी में बुद्धि नहीं रहती, वह पशु बन जाता है।”

लोग बड़ी श्रद्धा से पंडितजी का उपदेश सुन रहे थे। पंडितजी ने आगे कहा, “क्रोध चाण्डाल होता है। उससे हमेशा बच कर रहो।”

भीड़ में एक ओर को एक जमादार बैठा था, जिसे पंडितजी सड़क पर झाड़ू लगाते हुए देखा करते थे। अपना उपदेश समाप्त करके जब पंडितजी जाने लगे तो वह जमादार भी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

लोगों की भक्ति-भावना से फूले हुए पंडितजी भीड़ के बीच में से आगे आ रहे थे। इतने में पीछे से भीड़ का रेला आया और पंडितजी गिरते-गिरते बचे। धक्के में वह जमादार से छू गये। फिर क्या था। उनका पारा चढ़ गया। बोले, “दृष्ट, तू यहां कहां से आ मरा। मैं भोजन करने जा रहा था। तूने छूकर मुझे गंदा कर दिया। अब मुझे स्नान करना पड़ेगा।”

उन्होंने जमादार को जीभर कर गालियां दीं। असल में उनको बड़े जोर की भूख लगी थी और वह जल्दी-से-जल्दी यजमान के घर पहुंच जाना चाहते थे।

पास ही में गंगा नदी थी। लाचार होकर पंडितजी उस ओर तेजी से लपके।

तभी देखते क्या हैं कि वह जमादार उनसे आगे-आगे चला जा रहा है। पंडितजी ने कड़क कर पूछा, “क्यों रे जमादार के बच्चे, तू कहां जा रहा है?”

जमादार ने जवाब दिया, “नदी में नहाने। अभी आपने कहा था न कि क्रोध चाण्डाल होता है। मैं उस चाण्डाल से छू गया। इसलिए मुझे नहाना पड़ेगा।”

पंडितजी को जैसे काठ मार गया। वह आगे एक शब्द भी न कह सके और जमादार का मुंह ताकते रह गये।

४८ : दिव्य जीवन की झांकियां

: ४२ :

काँटे के बदले फूल

हजरत अली के पास एक नौकर था। एक दिन वह किसी बात पर नाराज हो गया और नौकरी छोड़कर चला गया।

हजरत अली मस्जिद में नमाज पढ़ने गये तो वह नौकर चुपचाप वहां पहुंचा और उसने तलवार निकाल कर हजरत अली पर वार किया।

हजरत अली के बड़ी चोट आई। खून बहने लगा। कुछ लोगों ने उन्हें उठाया और उनकी सेवा करने लगे।

कुछ ने दौड़कर नौकर को पकड़ लिया और हजरत अली के सामने उपस्थित किया।

इतने में हजरत अली को प्यास लगी। उन्होंने पानी मांगा। लोग दौड़े और शरबत ले आये। गिलास में भरकर जब हजरत अली के सामने पेश किया तो उन्होंने नौकर की ओर इशारा करके कहा, “मुझे नहीं, पहले उसे पिलाओ। देखते नहीं, वह बेचारा कितना थक गया है और किस बुरी तरह से हांप रहा है।”

लोगों ने नौकर की ओर गिलास बढ़ाया तो उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। हजरत अली ने बड़े प्यार से कहा, “मेरे भाई, रोओ मत। गलती हम सबसे हो जाती है। शरबत पीलो।”

नौकर उनके पैरों पर गिर गया और अपने किये पर बहुत ही पछताने लगा।

हजरत अली ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, “जो अपनी गलती को जान लेता है और आगे न करने का फैसला कर लेता है, वह जिन्दगी में बहुत ऊंचा उठ जाता है।”

दिव्य जीवन की झांकियाँ : ४९

: ४३ :

सहनशीलता का फल

एक फकीर थे। एक दिन वह कहीं जा रहे थे। रास्ते में देखते क्या हैं कि एक नौजवान हाथ में तम्बूरा लिये बैठा है और गंदे-गंदे गीत गा रहा है।

फकीर वहां जाकर रुक गया। चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा, “अल्लातल्ला, तू सबसे बड़ा है। तू ही सबका परवरदिगार है। बिना तेरे इस दुनिया का पत्ता भी नहीं हिल सकता।”

नौजवान मस्ती में गा रहा था। उसने फकीर को चिल्लाते देखा तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने चीखकर कहा, “चुप हो जा, क्या बकता है?”

फकीर ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। बोला, “हे खुदा, तू बेअकलों को अकल दे।”

नौजवान ने आव देखा, न ताव, हाथ का तम्बूरा लेकर फकीर के सिर पर दे मारा। तम्बूरा टूक-टूक हो गया। फकीर मुस्कराया और बिना एक शब्द के आगे बढ़ गया।

अपनी झोंपड़ी पर आकर फकीर ने अपने शगिर्द को सब हाल सुनाया और कहा, “तू उस नौजवान के पास जा और उसे तम्बूरे की कीमत दे आ। एक थाली में मिठाई भी। गुस्सा बहुत बुरी चीज है। मुझे अफसोस है कि मेरी वजह से उसे इतना गुस्सा आया।”

शिष्य तम्बूरे का दाम और मिठाई लेकर वहां गया और उससे कहा, “ये चीजें फकीर साहब ने तुम्हारे लिये भेजी हैं।”

५० : दिव्य जीवन की झांकियां

इतना सुनते ही नौजवान की आंखें खुल गईं। वह दौड़ा-दौड़ा फकीर के पास आया और अपनी करनी के लिए मांफी मांगने लगा।

फकीर ने बड़े प्यार से उसे सीने से लगा लिया।

: ४४ :

दिल का दीया

एक आदमी था। वह हनुमान की रोज पूजा किया करता था। चाहे जाड़ा हो या गर्मी या बरसात, वह सबेरे ही मंदिर में जाता और दीया जला आता।

वह मंदिर जिसके पड़ोस में था, वह आदमी उसे रोज वहां आते देखता। एक दिन उसने पूछा, “क्यों भाई, ऐसी क्या बात है कि तुम रोज यहां आते हो और एक दिन का भी नागा नहीं करते?”

वह आदमी बोला, “मुझ पर एक मुकदमा चल रहा था। मैंने भगवान से मनौती मानी थी कि अगर मैं मुकदमा जीत जाऊंगा तो रोज तुम्हारी पूजा करूंगा। भगवान की दया हुई और मैं मुकदमा जीत गया।”

उस आदमी ने पूछा, “मुकदमा क्या था?”

वह बोला, “मैंने किसी की जमीन दबा ली थी। उसने अदालत में जाकर मुझ पर मुकदमा कर दिया। अदालत में कागज चलते हैं। जिसको जमीन छोनी, वह कागज तैयार नहीं करा सका। मैंने अपने वकील से तैयार करा लिये। फिर मुझ पर भगवान ने भी कृपा कर दी। मुकदमा जीत गया।”

उस आदमी ने कहा, “तुम इसे भगवान की कृपा कहते हो । यह कृपा नहीं, उसकी अकृपा है । भगवान अन्याय में कभी किसी का साथ नहीं देते । तुमने उन्हें धोखा दिया है और अब अपने को धोखा दे रहे हो ।”

पर वह आदमी दुनियादार था । वह बाहर दीया जलाता था, लेकिन उससे अंदर का दीया नहीं जला था । वह नहीं जानता था कि भगवान की असली कृपा तो तब होती है, जब आदमी के दिल का दीया जल जाता है ।



१२ : विज्ञान विभाग

: २ :

पावन स्मृतियां

151
विज्ञान भाग

: १ :

गांधीजी की आत्मीयता

सन् १९४७ की घटना है। गांधीजी नई दिल्ली की भंगी बस्ती में ठहरे हुए थे। देश के विभाजन के कारण शरणार्थियों की समस्या बड़े उग्र रूप में सामने थी। बहुत से लोग पाकिस्तान से दिल्ली आ गये थे और उनमें बड़ी कटुता थी। गांधीजी उन्हें बार-बार समझाते थे, पर उनका क्षोभ बढ़ता ही जाता था। एक दिन जब गांधीजीने अपनी प्रार्थना सभा में कहा कि लोगों के दुःख को मैं समझ सकता हूँ, पर उन्हें धीरज रखना चाहिए तो एक वृद्धा रोते-रोते आवेश में चीख पड़ी, “नहीं, हमारा दुख-दर्द कोई नहीं समझ सकता। हमारा सब कुछ लुट गया है, हमारा सब कुछ बरबाद हो गया है।”

उन दिनों ऐसे दृश्य प्रायः हर रोज गांधीजी की प्रार्थना सभा में दिखाई दिया करते थे। हम लोग अक्सर शाम की प्रार्थना में शामिल होने चले जाते थे। देश के कोने-कोने से नेता लोग वहां आते थे और प्रार्थना के बाद चबूतरे से उठते ही गांधीजी की किसी-न-किसी प्रमुख व्यक्ति से बातचीत शुरू हो जाती थी।

एक दिन शाम को रोज की तरह मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ वहां पहुंचा। जाने में थोड़ी देर हो गई थी, प्रार्थना शुरू हो चुकी थी, इसलिए हम सब चुपचाप एक ओर को जाकर खड़े हो गये। प्रार्थना समाप्त होनेपर गांधीजी उठकर चले तो लोगों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया। जैसे-तैसे भीड़ को हटाया गया और गांधीजी अपने कमरे की ओर बढ़े। कमरा वहां से तीस-पैंतीस गज की दूरी पर रहा होगा। रास्ते के दोनों ओर मर्द-औरतें खड़े थे। गांधीजी किसी नेता से बातें करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

५६ : दिव्य जीवन की झांकियां

हम रास्ते के सहारे खड़े थे। मेरी गोद में मेरी चार बरस की लड़की अन्नदा थी। ज्योंही गांधीजी नजदीक आए, अन्नदा बड़े प्यार से चिल्लाई—“बापू।”

गांधीजी के दाएं-बाएं और पीछे काफी लोग थे और वह अपने साथ वाले सज्जन से बड़ी गंभीर चर्चा कर रहे थे, फिर भी उन्होंने बालिका की पुकार सुन ली। उनके पैर मानों स्वतः ही वहां रुक गये।

मुस्कराते हुए वह कोई एक मिनट तक अन्नदा के सामने खड़े उसकी ओर देखते रहे, फिर मुंह बना कर उन्होंने ‘ख-औ’ किया, जैसे बच्चों को खुश करने के लिए घर के बड़े-बूढ़े किया करते हैं और आगे बढ़ गये।

गांधीजी की इस आत्मीयता को देखकर मैं चकित रह गया। उनके लिए बहुत-सा काम करने को पड़ा था और उनकी एक-एक मिनट बड़ी कीमती थी, फिर भी प्यार की आवाज कान में पड़ने पर वह जैसे सब कुछ भूल गये।

: २ :

जवाहरलालजी की निडरता

कांग्रेस के सालाना जलसों में वैसे ही काफी भीड़ इकट्ठी हो जाती है, लेकिन कल्याणी-अधिवेशन में तो भीड़ का कोई ठिकाना न था। बाहर के लोगों के अलावा कलकत्ते के पास होने के कारण सारी नगरी उमड़ पड़ी थी। बड़ा विशाल पण्डाल बनाया गया था। उसमें लाखों आदमी बैठ सकते थे।

खुले अधिवेशन का दूसरा दिन था। कुछ नेताओं के भाषण हो चुके थे। कुछ के होने वाले थे। अचानक भीड़ बेकाबू हो गई।

शोर मचने लगा । माइक पर बार-बार शान्ति रखने के लिए कहा गया, पर कौन सुनता । व्यवस्थापकों को शक था कि साम्यवादी शरारत करने पर तुले हुए थे और जो कुछ हो रहा था उसमें उन्हें उसी दल के लोगों का हाथ दिखाई देता था । उन्हें यह भी डर था कि थोड़ा अंधेरा होने पर वे लोग बिजली के तार तोड़ देंगे और इस तरह अशान्ति पैदा करके कांग्रेस के अधिवेशन को बिगाड़ देंगे ।

जवाहरलालजी अध्यक्षता कर रहे थे । वह कुछ देर तक चुपचाप उस गड़बड़ को देखते रहे, फिर उठ कर मंच पर आये । बोले, “आप सब चुप हो जायें । मैं आज आपको एक तमाशा दिखाना चाहता हूँ ।”

वह क्या तमाशा दिखायेंगे, उत्सुकता से लोगों का शोर एक-दम बन्द हो गया । जवाहरलालजी ने कहा, “तमाशा दिखाने से पहले मैं आपका इस्तहान लेना चाहता हूँ । मंच के ठीक सामने आप लोग एक गज चौड़ा रास्ता बना दें । शर्त यह है कि कोई उठकर खड़ा न हो और सब चुपचाप पीछे सरक जायें ।”

उनका इतना कहना था कि लोगों ने सरक-सरक कर रास्ता बना दिया ।

“बहुत ठीक ।” जवाहरलालजी बोले, “देखिए, अब मैं मंच से उतर कर नीचे आता हूँ । उस रास्ते से, जो आपने बनाया है, मैं आखीर तक जाऊंगा और फिर लौट कर आऊंगा । शर्त यह होगी कि कोई भी शख्स आगे नहीं बढ़ेगा, उठकर खड़ा नहीं होगा और मेरे पैर छूने के लिए एक भी हाथ आगे नहीं बढ़ेगा, समझे ?”

हम लोगों ने सोचा, जवाहरलालजी की यह चाल है । उन्होंने यह खेल इसलिए किया है कि वह लोगों के बीच से उस किनारे

५८ : दिव्य जीवन की झांकियां

तक जायेंगे, उधर उनकी मोटर आ जायगी और उसमें बैठ कर चले जायेंगे।

जवाहरलालजी धीरे-धीरे मंच से उतरे। उनका अंग-रक्षक साथ उतरा और ज्योंही वह अपने बनवाये रास्ते पर आये कि उन्होंने अंग-रक्षक को झिड़क कर लौटा दिया। लाखों की भीड़ थी और जवाहरलालजी को उस जन-समुदाय में कम-से-कम पांच-सात सौ गज जाना था।

अपार भीड़ के बीच जब वह अकेले आगे बढ़े तो लोगों के दिल कांप उठे। यदि उस भीड़ में से किसी ने कुछ कर दिया तो ? पर जवाहरलालजी निडर होकर चले जा रहे थे, चले जा रहे थे और लाखों लाख श्रद्धालु आंखें बड़े स्नेह से चुपचाप उन्हें देख रही थीं।

वह भीड़ के अन्त तक गये। वहां थोड़ा रुके। हमने समझा कि अब कार आई और अब वह रवाना हुए, लेकिन नहीं, वह मुड़े और मंच की ओर वापस चल पड़े। उस विशाल मजमे के बीच जिन्होंने जवाहरलालजी को मुस्कराते हुए चलते देखा, वे उस दृश्य को कभी भूल नहीं सकते। इतनी निर्भीकता गांधीजी को छोड़ उनके समकालीन अन्य किसी भी नेता में शायद ही देखी गई हो।

वह लौट कर सीधे मंच पर गये। माइक के सामने खड़े होकर सबका अभिवादन किया। बोले, "मैं आप सबको मुबारकबाद देता हूं। आप लोग इस्तहान में पास हो गये और बहुत अच्छी तरह से। मैंने आपको सौ में पिच्छानवे नम्बर दिये। पांच इसलिए काट लिए कि एक आदमी ने मेरे पैर छूने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया था। खैर, अब मैं आप लोगों को आगे का तमाशा दिखाता हूं। आप खामोश रहें। देखिये, मेरे पास बहुत से ऐक्टर

(अभिनेता) हैं । वे आपको अपना-अपना करतब दिखावेंगे । मैं सबसे पहले गुलाम मोहम्मद बख्शी को बुलाता हूँ । आओ, भाई । ”

उसके बाद मंच पर एक के बाद एक कई नेता आये और उन्होंने बड़े ओजस्वी भाषण दिये, लेकिन लाखों की भीड़ को नियन्त्रित करने में जवाहरलालजी ने जो हौसला दिखाया, वह एक ऐतिहासिक घटना बन गई । उनकी इस निडरता का नतीजा यह हुआ कि अधिवेशन की कार्रवाई बड़े मजे से आगे चली और अन्त तक एक पत्ता भी नहीं हिला ।

: ३ :

मालवीयजी का राष्ट्रभाषा-प्रेम

सन् १९३७ या ३८ की बात है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-समारोह था । उस अवसर के लिए एक विशाल पण्डाल बनाया गया था, जिसमें छात्र-छात्राएं हजारों की संख्या में उपस्थित थे । जिन्हें डिग्नरियां मिलने वाली थीं, वे लोग काला चुगा पहने आगे की कुर्सियों पर बैठे थे । शहर के बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति आये थे । वैसे तो दीक्षान्त-समारोह हर साल होता था, पर इस साल के समारोह का विशेष आकर्षण था । दीक्षान्त-भाषण देने के लिए देश के महान् नेता और भारतीय संस्कृति के परम उपासक महामना पंडित मदनमोहन मालवीय आ रहे थे । मैं अपनी ला की डिगरी लेने के लिए वहां गया था ।

समारोह का समय हुआ । सबकी आंखें द्वार की ओर मुंड गईं । ठीक समय पर हलचल हुई । मालवीयजी आये । सबने खड़े होकर उनका अभिवादन किया । वही परिचित आकृति थी, जो प्रायः चित्रों में देखने को मिलती थी । लम्बी अचकन, गले में दुपट्टा, सिर

६० : दिव्य जीवन की झांकियां

पर पगड़ी। ऐसा लगता था, मानों कोई ऋषि हों। चेहरे पर बड़ी मनोरम सात्विकता झलक रही थी।

विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने बड़े सम्मान से उन्हें मंच पर बिठाया। समारोह की कार्रवाई आरम्भ हुई। छात्र-छात्राओं को डिग्नरियां दी गईं। उसके बाद मालवीयजी दीक्षांत-भाषण देने के लिए खड़े हुए।

विश्वविद्यालय के अबतक के इतिहास में जितने दीक्षान्त-समारोह हुए थे, उनमें चोटी के शिक्षा-शास्त्री, तत्त्ववेत्ता, विद्वान् तथा अन्य विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हुए थे, पर सबने अपना दीक्षान्त भाषण अंग्रेजी में दिया था। अतः लोग सोचते थे कि मालवीयजी भी अंग्रेजी में बोलेंगे। अंग्रेजी पर उनका कितना अधिकार था, यह किसी से छिपा नहीं था।

पर यह क्या! मालवीयजी ने अपना भाषण हिन्दी में आरम्भ किया। भारत उन दिनों पराधीन था। अंग्रेजी का बोल-बाला था। हिन्दी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने का अर्थ था शासन के कोप को आमंत्रित करना, पर मालवीयजी तो देश-भक्ति में डूबे थे और उनकी दिलेरी का लोहा विदेशी सरकार भी मानती थी।

उन्होंने कुछ ही वाक्य बोले होंगे कि भीड़ में से एक नौजवान उठ खड़ा हुआ और बड़ी ऊंची आवाज में उसने कहा, “सर, स्पीक इन इंग्लिश। वो काण्ट अण्डरस्टेण्ड योर हिन्दी।” (श्रीमानजी, अंग्रेजी में बोलिये। आपकी हिन्दी हमारी समझ में नहीं आती।)

मालवीयजी युवक को बोलते देखकर चुप हो गये और शान्ति से उस युवक की बात सुनी। उनका चेहरा तमतमा आया। वह इतनी कठिन हिन्दी नहीं बोल रहे थे कि किसी को समझने में कठिनाई हो, पर आभिजात्य वर्ग के कुछ लड़के अंग्रेजी के इतने

भक्त थे कि हिन्दी को सहन नहीं कर पाते थे । संभवतः वह लड़का उन्हीं में से एक था ।

मालवीयजी ने उस युवक की ओर देखा और ऊँचे स्वर में कहा, “मुझे अंग्रेजी बोलना आता है । शायद मैं अंग्रेजी में अपनी बात हिन्दी की अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंग से कह सकता हूँ । लेकिन मैं एक पुरानी अस्वस्थ परम्परा को तोड़ना चाहता हूँ । जरा धीरज रखो । मेरी बात तुम्हारी समझ में आ जायगी ।

उन्होंने अपनी बात इतने आत्म-विश्वास से कही कि आगे उस नौजवान को कुछ भी कहने का साहस न हुआ । पण्डाल में इतनी निस्तब्धता छा गई कि यदि सूई भी गिरती तो उसकी आवाज सुनाई दे जाती ।

इसके बाद मालवीयजी ने अपने भाषण को आगे बढ़ाया । वह घण्टे भर से अधिक बोले । उन्होंने भाषा का ही बंधन नहीं तोड़ा, बल्कि अबतक भाषणों में जो कहा जाता था, उससे भिन्न बातें कहीं । उन्होंने शिक्षा की शास्त्रीय व्याख्या नहीं की, उन्होंने शिक्षा के सैद्धान्तिक महत्व पर प्रकाश नहीं डाला, उन्होंने विद्यार्थियों को बताया कि जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में शिक्षा का किस प्रकार प्रयोग होना चाहिए और उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दुनिया में सफलता की कुंजी मनुष्य का चरित्र है ।

राष्ट्र-भाषा के प्रति इतना प्रेम और भारतीय संस्कृति के प्रति इतनी श्रद्धा लोगों ने पहले कम ही देखी थी ।

: ४ :

सरोजिनी नायडू की गर्जना

उन दिनों मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था । राष्ट्रीय नेता समय समय पर सिनेट हाल में भाषण देने आते रहते थे ।

६२ : दिव्य जीवन की झांकियां

विद्यार्थियों को इससे बड़ी खुशी होती थी। एक तो नेताओं के दर्शन हो जाते थे, दूसरे उनके विचार भी उन्हीं के मुंह से सुनने को मिल जाते थे।

एक बार श्रीमती सरोजिनी नायडू को बोलने के लिये आमंत्रित किया गया था। उनके भाषण का शीर्षक बड़ा विचित्र था—“वाचमैन, ह्वाट आव दी डान?” (पहरूवे, कहो, भोर के क्या समाचार हैं?) अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध कविता है—“वाचमैन, ह्वाट आव दी नाइट?” (पहरूवे, रात के हालचाल बताओ।) पुराने जमाने में पहरेदार लाठी में घंटो बांध कर इधर-से-उधर पहरा देते घूमा करता था और उसकी घण्टी की आवाज से लोग उसे पहचान कर पूछा करते थे कि सब कुशल-मंगल तो है न?

सरोजिनी नायडू के भाषण का विषय उससे मिलता-जुलता था। उन्हें बताना था कि स्वतंत्रता की जो नई लहर फैल रही थी, उसका क्या परिणाम हो रहा था और उसकी संभावनाएँ क्या थीं?

सिनेट हाल विद्यार्थियों से खचाखच भरा था। विषय तो महत्त्वपूर्ण था ही, छात्रों को पता था कि सरोजिनी नायडू बहुत अच्छी वक्ता और उच्च कोटि की कवयित्री हैं।

सरोजिनी नायडू आईं। शरीर उनका कुछ भारी था, पर स्फूर्ति उसमें से फूट पड़ती थी। वह आकर मंच पर बैठ गईं। उनका परिचय कराया गया और उसके बाद वह बोलने के लिए खड़ी हुईं।

संयोग से उसी समय माइक खराब हो गया। उसे सुधारने का प्रयत्न किया गया, लेकिन सरोजिनी नायडू में इतना धीरज कहां था कि खड़ी होकर उसके ठीक होने की राह देखें। उन्होंने

दिव्य जीवन की झांकियां : ६३

झट खींचकर माइक को एक ओर कर दिया और बुलन्द आवाज में बोली, “मेरी छाती में अब भी इतना दम है कि मेरी आवाज इस हाल के उस दूर कोने तक पहुँच सकती है। माइक की जरूरत नहीं है।”

इतना कहकर उन्होंने बिना माइक के ही बोलना आरंभ कर दिया। उनकी आवाज सुरीली थी, लेकिन उसमें इतनी बुलन्दगी भी थी, इसका पता उस दिन चला। वह कोई डेढ़ घण्टे बोली, पर क्या मजाल कि एक भी व्यक्ति टस-से-मस हो जाय। विषय बड़ा गंभीर था, लेकिन उन्होंने बीच-बीच में कहानियाँ और कविताएं डाल कर उसे इतना रोचक और सजीव बना दिया कि सुनने वाले जैसे मंत्र-मुग्ध होकर बैठे रहे और उनकी वाणी का मुग्ध-भाव से आनंद लेते रहे।

: ५ :

विनोबाजी की साधना

आचार्य विनोबा के पेट में अल्सर है। वह कभी-कभी उन्हें बड़ा हैरान करता है। कुछ साल पहले जब उनके पेट में दर्द बहुत बढ़ गया तो डाक्टरों ने उनकी परीक्षा की। अच्छी तरह देखने के बाद वे चिंतित भाव से बोले, “आपको कुछ दिन के लिए पैदल चलना छोड़ देना चाहिए।”

विनोबाजी ने कहा, “मेरे पेट में दर्द है, पैरों में नहीं।”

डाक्टर बोले, “आपकी हालत ऐसी है कि आपको आठ महीने आराम करना चाहिए।”

विनोबा ने कहा, “आपके जाँचने में कहीं चूक रह गई दीखती है, जो आपने चार महीने छोड़ दिये। आपको कहना चाहिए:

६४ : दिव्य जीवन की झांकियां

था—मैं बारहो महीने आराम करूँ ।”

डाक्टरों ने आगे कहा, “आप जो खाना ले रहे हैं, उससे आपको बारह सौ कैलोरी मिलती हैं। चाहिए आपको बाईस सौ ।”

विनोबाजी ने कहा, “आपने खाने की कैलोरी तो जोड़ लीं, लेकिन मैं खुले में रोज पैदल चलता हूँ, मुक्त आकाश के नीचे प्रार्थना करता हूँ, उससे जो कैलोरी मिलती है, वे तो आपने हिसाब में कहां लीं ?”

विनोबाजी के इन तर्कों के आगे डाक्टर निरुत्तर हो गये। समझ गये कि उनसे पार पाना असंभव है। वह अपने मन की करेंगे। डाक्टर निराश होकर चले गये।

डाक्टरों के चले जाने के बाद विनोबाजी को एकांत मिला तो उन्होंने अपने पेट से पूछा, “क्यों भाई, तुम मुझसे क्यों नाराज हो ?”

पेट बोला, “इसलिए कि तुम अनाचारी हो। मैं जितना बोझ सह सकता हूँ, उससे ज्यादा मुझ पर डालते हो। इसी से तुम्हें तंग करता हूँ ।”

विनोबाजी उन दिनों दिन में पांच बार में पांच पाव दही लिया करते थे। पेट की बात सुनकर उन्होंने पांच पाव दही को अठारह बार में लेना शुरू किया। एक कटोरी में थोड़ा-सा दही लेते और चम्मच से धीरे-धीरे इतनी देर में इस्तेमाल करते जितनी देर में गीता के एक अध्याय का पारायण हो जाता।

नतीजा यह हुआ कि एक दिन पेट ने उनसे कहा, “तुम बड़े भले आदमी हो। तुमने मुझ पर बोझ डालना बंद कर दिया। अब मैं भी तुम्हें हैरान नहीं करूंगा ।”

इस घटना को सुनाते हुए विनोबाजीने बताया कि उनका दर्द अपने आप दूर हो गया।

दिव्य जीवन की झांकियां : ६५

: ६ :

निरालाजी की शिष्टता

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'कुक्षेत्र' पुस्तक पुरस्कृत हुई थी। लेखक के अभिनंदन में प्रयाग की 'साहित्यकार संसद्' ने इलाहाबाद में एक समारोह का आयोजन किया। संयोग से मैं उस दिन वहीं था। समारोह के संयोजक का विशेष आग्रह होने पर मैं वहां चला गया। निरालाजी उन दिनों संसद् के भवन में गंगा के किनारे, जहां समारोह की व्यवस्था की गई थी, रहते थे। मैं जान-बूझ कर समय के कुछ पहले पहुँच गया, जिससे निरालाजी से कुछ बातचीत हो सके। मेरे साथ मेरी पत्नी की बहन थीं, जो उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ाती थीं।

बाहर चबूतरे पर कुछ कुर्सियां पड़ी थीं और निरालाजी स्वयं एक कुर्सी पर बैठे कुछ गुनगुना रहे थे। उन्होंने उठ कर हम लोगों का अभिवादन किया। बैठने पर उन्होंने गायत्री के बारे में मुझसे पूछताछ की कि वह कहां तक पढ़ी हैं और क्या करती हैं। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह विश्वविद्यालय में पढ़ाती हैं तो बोले, "हमारे पास भी एम० ए० के कई विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ने आते हैं। हम उन्हें शेक्सपियर के नाटक पढ़ाते हैं।"

इतना कहते-कहते वह उठे और किसी से चाय बनाने के लिए कहकर फिर हम लोगों के बीच आ बैठे और किसी कविता की पंक्तियां धीमी आवाज में सस्वर गाने लगे।

इतने में दहा (मैथिलीशरण गुप्त) और राय कृष्णदासजी आ गये। उनके आने के कुछ ही देर बाद डा० हेमचन्द्र जोशी आ

६६ : दिव्य जीवन की झांकियां

पहुंचे। निरालाजी ने उठ-उठ कर सबका अभिवादन किया और सम्मान-पूर्वक सबको बिठाया।

डा० हेमचन्द्र जोशी और निरालाजी के बीच के तनाव का हम सबको पता था। अतः हमें आशंका हुई कि कहीं निरालाजी किसी बात पर उत्तेजित न हो उठें।

निरालाजी एक छोर पर बैठे थे, जोशीजी दूसरे छोर पर। इसलिए वे एक-दूसरे से दूर पड़ गये थे और निरालाजी ज्यादातर हम लोगों से बातें करते रहे।

थोड़ी देर में चाय आ गई। निरालाजी ने इशारा करके ट्रे को अपने सामने रखवा लिया। अपने हाथ से एक प्याला चाय बनाई और उसके बाद जो किया, उसे देखकर हम सब चकित रह गये। उन्होंने प्याला उठाया और सीधे डा० हेमचन्द्र जोशी के पास जाकर उन्हें दे आये।

निरालाजी की मानसिक अवस्था उस समय भी ठीक नहीं थी। बात-चीत से और बाद में समारोह में अपने भाषण से उन्होंने इस बात की और भी पुष्ट कर दी, लेकिन इतना होने पर भी वह यह नहीं भूले कि चूँकि वह साहित्यकार संसद् के भवन में रहते थे। इसलिए मेजबान के नाते उनका कर्तव्य था कि वह सबका समुचित आदर-सत्कार करें। भारतीय संस्कृति में अतिथि की बड़ी महिमा मानी गई है। कहा जाता है कि अपने घर पर दुश्मन भी आ जाय तो उसकी आवश्यकता करनी चाहिए। निरालाजी भारतीय संस्कृति के उपासक थे और उन्होंने अपनी सुसंस्कृति का बड़ा ही ऊँचा दृष्टांत हम सबके सामने रखवा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि निरालाजी के इस व्यवहार से जोशीजी गद्गद हो गये। हमारे दिलों की जो हालत हुई, वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती।

: ७ :

सरदार पटेल की दृढ़ता

बहुत पुरानी घटना है। सरदार पटेल की कोठी पर गांधी स्मारक निधि के ट्रस्टी मण्डल की बैठक थी। सरदार उन दिनों अस्वस्थ थे। एक ट्रस्टी प्रस्तावों के मसविदे तैयार करने के लिए मुझे भी साथ ले गये। सरदार अपने ड्राइंग रूम में सोफे पर लेटे थे। आहट पाकर उन्होंने सिर घुमाया और हम लोगों का अभिवादन करके लेटे-लेटे बात करते रहे।

बैठक की अध्यक्षता राजेन्द्रबाबू ने की। बड़ी शांति के साथ सारी कार्रवाई हुई। एक-दो प्रसंगों पर नेहरूजी ने ताव दिखाया, जैसा कि उनका स्वभाव था, लेकिन राजेन्द्रबाबू ने स्थिति को संभाल लिया।

घण्टे-डेढ़ घण्टे में बैठक समाप्त हो गई। सब लोग जाने लगे। राजेन्द्रबाबू को सरदार के साथ ही भोजन करना था। लेकिन भोजन करने के समय में थोड़ी देर थी, इसलिए यह तय हुआ कि राजेन्द्रबाबू राष्ट्रपति भवन होकर फिर आवेंगे। सरदार उन्हें बाहर तक छोड़ने आये।

जिन ट्रस्टी महोदय के साथ मैं गया था, उन्हें राजेन्द्रबाबू से कुछ काम था। किसी मसविदे पर उनके हस्ताक्षर कराने थे। मसविदा तैयार था, लेकिन हस्ताक्षर कराने का उन्हें ध्यान न रहा। राजेन्द्रबाबू मोटर में बैठ गये, तब उन्हें याद आई।

मैंने कहा, “कोई बात नहीं है। राजेन्द्रबाबू तो यहां फिर आने वाले हैं। आप यह कागज मणिबहन को दे दीजिए। वह उनसे हस्ताक्षर करा लेंगी।”

मणिबहन वहीं एक ओर को खड़ी थीं। हम लोग उनके पास

६८ : दिव्य जीवन की झांकियां

गये और कागज उनकी ओर बढ़ाकर कहा कि राजेन्द्रबाबू खाना खाने आवें तो उस पर उनके हस्ताक्षर करा दें।

बात बड़ी मामूली-सी थी, पर मणिबहन ने साफ इंकार कर दिया। बोलीं, “यह काम मैं नहीं कर सकती।”

इतने में सरदार राजेन्द्रबाबू को रवाना करके वहां आये। हम लोगों को खड़े देखकर बोले, “क्यों, क्या बात है?”

ट्रस्टी महोदय ने कहा, “सरदार, इस कागज पर राजेन्द्रबाबू के हस्ताक्षर होने हैं। वह यहां आने वाले हैं। पर मणिबहन कहती हैं कि वह इस काम को नहीं करा सकतीं।”

बात यह सांचकर कही गई थी कि सरदार मणिबहन से कह देंगे, लेकिन सरदार की गंभीर आकृति पर तनाव की रेखाएं उभर आईं। बोले, “मणिबहन ठीक तो कहती हैं। राजेन्द्रबाबू यहां खाना खाने के लिए आ रहे हैं, हस्ताक्षर करने के लिए नहीं। अगर आपको यह काम कराना है तो राजेन्द्रबाबू के यहां जाओ।”

इतना कहकर सरदार आगे बढ़ गये।

मैं खड़ा-खड़ा सोचता रहा कि सरदार में यदि इतनी दृढ़ता न होती तो वह स्वतन्त्र भारत को एकसूत्र में शायद ही पिरो पाते।

: ८ :

राजेन्द्रबाबू की विनम्रता

कई साल पहले की बात है। सुप्रसिद्ध राष्ट्रसेवी महात्मा भगवानदीनजी को भेंट करने के लिए हम लोगों ने कुछ रुपये इकट्ठे किये थे। हम सबकी इच्छा हुई कि वह थैली एक समारोह करके उन्हें भेंट की जाय। सवाल उठा कि किसके हाथों थैली दिलवाई

जाय। उन दिनों राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे। उनके और महात्माजी के संबंध बड़े पुराने और घनिष्ठ थे। थोड़ा सोचने पर हम लोगों की निगाह राजेन्द्रबाबू पर गई।

हम तीन जने राष्ट्रपति भवन में जाकर राजेन्द्रबाबू से मिले। उनकी तबीयत अच्छी नहीं थी। बड़े संकोच के साथ हमने उनसे अपनी बात कही और अन्त में निवेदन किया, “आप देख लीजिये। महात्माजी का अभिनन्दन आपके हाथों हो, इससे हम सबको खुशी होगी, लेकिन आप पर ज्यादा श्रम नहीं पड़ना चाहिए।”

हम लोगों की बात उन्होंने ध्यान से सुनी। बोले, “नहीं, मेरी तबीयत ठीक है। मामूली सर्दी-जुकाम है। दो-एक दिन में अच्छा हो जायगा। मैं इस समारोह में जरूरत आऊंगा।”

उनकी स्वीकृति पाकर हमें बड़ा हर्ष हुआ। पर तभी समस्या आई कि समारोह कहां हो? महात्माजी नागपुर में रहते थे, हम लोग दिल्ली में थे। लेकिन कुछ लोगों का आग्रह था कि महात्माजी को वहीं सम्मानित करना चाहिए, जहां वह रहते हैं। हमने यह बात राजेन्द्रबाबू के सामने रखी, उन्हें बताया कि चूंकि व्यवस्था करने वाले हम लोग दिल्ली में हैं, इसलिए समारोह का दिल्ली में करना अधिक सुविधाजनक होगा।

राजेन्द्रबाबू ने कहा, “मैं इस बारे में सोचकर कल बताऊंगा।”

हम चले आये। घर आकर राजेन्द्रबाबू के निजी सचिव को फोन किया कि बाबूजी का स्वास्थ्य जैसा है, उसे देखते उन्हें नागपुर आने-जाने की हैरानी से बचाना चाहिए। दूसरे, हमें भी दिल्लीमें ही समारोह करने में अनुकूलता है। इसलिए वह फैसला दिल्ली के ही लिए करा लें।

अगले दिन राष्ट्रपति भवन से फोन आया, “राष्ट्रपतिजी ने कहा

७० : दिव्य जीवन की झांकियां

है कि समारोह नागपुर में होगा। महात्माजी नागपुर में हैं। उनका सम्मान करने के लिए हमें ही वहां जाना चाहिए। उन्हें दिल्ली आने का कष्ट नहीं देना चाहिए।”

हमने उनसे एक बार फिर अनुरोध किया, पर वह नहीं माने। उनकी दलील थी कि इस प्रकार के काम श्रद्धा के साथ होने चाहिए और सम्मान पाने वाले व्यक्ति के बड़प्पन को पूरा मान मिलना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजेन्द्रबाबू तबीयत के खराब होते हुए भी नागपुर गये और बड़ी आत्मीयता से महात्माजी के अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित हुए।

: ९ :

रफ़ीसाहब की कर्मठता

रफ़ी अहमद किदवई में कई विशेषताएं थीं। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनको जो भी कार्य कराना होता था, तत्काल करा देते थे। उसे न तो वह स्वयं टालते थे और न लाल फीता-शाही में उसे उलझने देते थे।

सर्वोदय-सम्मेलन के राऊ-अधिवेशन के दिनों की बात है। इन्दौर के एक मित्र के साथ हम लोग रफ़ीसाहब से मिलने गये। सबरे के समय उनके यहां मिलने वालों की भीड़ लगी रहती थी। उन घण्टों में उनसे कोई भी मिल सकता था।

हम उनके सामने पहुंचे। दुआ-सलाम के बाद रफ़ीसाहब ने कहा, “कहिए आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं?”

मित्र ने कहा, “सम्मेलन सिर पर है और हमें टेलीफोन नहीं मिल रहा है। काम में बड़ा हर्ज हो रहा है।”

रफ़ीसाहब बोले, “अच्छा, और कुछ ?”

हमने कहा, “कान्फ्रेंस में दिल्ली से काफी लोग जाने वाले हैं। अगर उनके सुभीते के लिए रेल में एकाध डिब्बा और लग जाय तो बड़ा अच्छा होगा।”

“ठीक, और कोई खिदमत ?” रफ़ीसाहब ने सहज भाव से पूछा।

मित्र ने उनसे अनुरोध किया, “अगर उस मौके पर आप भी तशरीफ ला सकें तो बड़ी मेहरबानी होगी।”

“कोशिश करूंगा।”

पांच मिनट में सारी बातें हो गईं। हम बाहर आकर चर्चा करने लगे कि देखें, वह क्या-क्या काम कराते हैं।

मित्र इन्दौर लौट गये। दूसरे या तीसरे दिन उनकी सूचना आई कि रफ़ीसाहब को धन्यवाद दे दीजिये, फोन लग गया।

इतना ही नहीं सम्मेलन के अवसर पर रेल में एक डिब्बा भी और जोड़ा गया।

लेकिन तीसरी बात नहीं हुई। रफ़ीसाहब सम्मेलन में नहीं गये और यह कोई नई बात नहीं थी। रफ़ीसाहब की हमेशा काम में दिलचस्पी रही, लेकिन सम्मेलनों से वह बराबर बचने की कोशिश करते रहे। वह अक्सर मजाक में कहें भी दिया करते थे, “मैं नेता नहीं हूं, खिदमतगार हूं। मुझे खिदमत करने के लिए ही रहने दीजिये।”

रफ़ीसाहब के पास जाने कितने लोग अपनी-अपनी फरमाइशें लेकर आते थे। मुझे अचरज होता है कि वह कैसे उन सारी फरमाइशों को याद रखते थे और पूरा कराते थे। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता, जब रफ़ीसाहब ने किसी को निराश किया हो।

७२ : दिव्य जीवन की झांकियां

: १० :

नेताजी की न्याय-प्रियता

‘आजाद हिन्द फौज’ का निर्माण हो चुका था और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस उसे पूरी तरह शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। नई-नई समस्याएँ उठती थीं, लेकिन नेताजी उनसे घबराते नहीं थे। बड़े धीरज और मजबूती से रास्ता निकालते थे।

एक दिन एक विकट समस्या उठ खड़ी हुई। गाय हिन्दुओं की बहुत बड़ी कमजोरी है। वे उसका मांस खानेवालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उसी प्रकार सूअर मुसलमानों की कमजोरी है और उसके मांस का इस्तेमाल करने वालों के साथ वे कभी समझौता नहीं कर सकते।

‘आजाद हिन्द फौज’ में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे और गाय तथा सूअर को लेकर उन दोनों की अपनी-अपनी भावनाएँ थीं। रसोई में गाय का मांस पके, इस पर हिन्दुओं को आपत्ति थी और सूअर के मांस पर मुसलमानों को। नतीजा यह हुआ कि इस मसले को लेकर हिन्दू-मुसलमानों के दिलों में कुछ तनाव पैदा हो गया।

बात नेताजी के सामने पहुँची। लगा कि नेताजी दोनों पक्षों के लोगों को समझा देंगे कि खाने का मामला बहुत छोटा है और उस बारे में धर्म को घसीट कर नहीं लाना चाहिए।

लेकिन नेताजी ने ऐसा नहीं किया। वह अच्छी तरह जानते थे कि सैनिक का सबसे बड़ा धर्म लड़ना है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि आम तौर पर लोग धर्म की गहराई में नहीं जाते, कुछ ऊपरी चीजों को पकड़ लेते हैं और वे चीजें उनके लिए धर्म से भी ज्यादा महत्व की बन जाती हैं। गाय और सूअर का मसला

भी कुछ इसी प्रकार का था। उन्हें लेकर हिन्दू और मुसलमान दोनों की भावनाएं बड़ी जबर्दस्त थीं।

तब क्या हो ?

नेताजी ने सोचा और अन्त में वह निर्णय किया, जिसकी स्वप्न में भी कोई कल्पना नहीं कर सकता था।

अगले दिन लोगों को पता चला कि नेताजी ने आदेश दे दिया है कि रसोई में न गाय का मांस पकेगा, न सूअर का।

दोनों पक्षों की भावना को आदर देकर नेताजी ने अपनी न्याय-प्रियता का जो दृष्टान्त उपस्थित किया, उसकी याद करके आज भी लोगों के दिल भर आते हैं।

: ३ :

प्रेरक घटनाएँ

१६१
प्राप्त करे

: १ :

सच्ची दौलत

मास्को में एक दिन मैं किसी काम से सरकारी दफ्तर में गया। काम निबटाकर बाहर आया और अपने निवास की ओर चला तो रास्ता भूल गया। काफी देर तक इधर-उधर भटकता रहा, फिर भी सही रास्ता दिखाई न दिया तो परेशानी होने लगी। सबसे बड़ी हैरानी यह थी कि जितने लोग मिले, उसमें से कोई भी अंग्रेजी नहीं जानता था वे रूसी-भाषी थे और मेरे लिए उस भाषा का काला अक्षर भैंस बराबर था।

मेरा ख्याल है कि आधा घण्टा इस प्रकार निकल गया होगा। अचानक एक लड़की उधर से गुजरी। मुझे कुछ परेशान देखकर मेरे पास आई और कामचलाऊ टूटी-फूटी अंग्रेजी में बोली, “आप कुछ हैरान-से लगते हैं। क्या मैं कुछ मदद कर सकती हूँ?”

मैंने बड़े कृतज्ञ भाव से उसको ओर देखते हुए कहा, “ऐसा जान पड़ता है, मानो तुम्हें ईश्वर ने भेजा है। मुझे बोरोव्स्काया शोस्से जाना है, पर रास्ता ही नहीं मिलता।”

उसने मुस्कराकर कहा, “आप चिन्ता न करें। वहां जाने वाली बस का अड्डा पास ही है। मैं आपको साथ ले जाकर बस में बिठाल दूंगी। आप सीधे अपने ठिकाने पर उतर जायेंगे।”

मुझे बड़ा चैन पड़ा। हम लोग साथ-साथ चलने लगे। लड़की ने पूछा, “आप मास्को में कब से हैं?”

“कोई पन्द्रह दिन हो गये।”

“यहां की सब चीजें देख लीं?” उसने उत्सुकता से पूछा।

७८ : दिव्य जीवन की झांकियां

मैंने कहा, “तुम्हारी यह नगरी इतनी बड़ी है कि सब कुछ देखने के लिए महीनों चाहिए।”

हम लोग लाल चौक में चल रहे थे। उसने बाएं हाथ को संत बसील के गिरजे की ओर संकेत करके पूछा, “यह गिरजा आपने देखा है?”

मैंने कहा, “नहीं।”

वह बोली, “अगर कोई काम न हो तो चलिए, अभी देख लीजिये।”

मुझे कोई काम तो था नहीं। मैंने कहा, “चलो।”

हम दोनों गिरजे की ओर बढ़े। मैंने पूछा, “तुम क्या करती हो?”

“दसवीं कक्षा में पढ़ती हूँ।”

मैंने कहा, “वाह, यह भी खूब रही। मेरी लड़की भी दसवें दर्जे में पढ़ती है। तुम कितने भाई-बहन हो?”

वह बोली, “मेरे एक भाई हैं।”

“वह, यह भी कैसे संयोग की बात है!” मैंने किंचित् विस्मय से कहा, “मेरी लड़की के भी एक ही भाई हैं। अच्छा, तुम्हारे पिता क्या करते हैं?”

मेरे इस सवाल पर वह लड़की कुछ विचलित-सी हुई। थोड़ी रुक कर बोली, “मेरे पिता दूसरे महायुद्ध में मारे गये।”

हम दोनों विनोद करते, हँसते हुए, चल रहे थे। लड़की के मुँह से ये शब्द सुनते ही मेरी हँसी गायब हो गई। दिल को बड़े जोर का धक्का-सा लगा। धक्के-से कुछ संभलूँ कि तबतक लड़की बोल उठी, “एक बात कहूँ। पिता के जाने से दुख तो हुआ, घर

का आदमी जाता है तो चोट लगती ही है, पर सच मानिये, जो हुआ उसका हमें मलाल नहीं है, क्योंकि पिता के प्राण देश के लिए न्यौछावर हुए।”

चौदह बरस की उस बालिका के वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूँजते हैं। उनमें एक बहुत बड़ा रहस्य छिपा था। किसी भी महान् राष्ट्र की वास्तविक सम्पदा धन नहीं होता, इंसान होते हैं, वे इंसान जो अपनी मातृभूमि को अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हैं और उसके लिए सबकुछ बलिदान कर सकते हैं।

: २ :

देश-प्रेम की प्रतिमा

दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रवास में मैं और मेरे एक साथी थाईलैण्ड गये और कई दिन वहां रहे। अजुध्या, नगरप्रथम, बांगसेन और न जाने क्या-क्या स्थान देखे। बैंकाक मैं भी बहुत सी चीजें देखने को थीं। थाई-भारत-कल्चरल लाज के संचालक पं० रघुनाथ शर्मा तथा अन्य मित्रों के सहयोग से कम समय में अधिक-से-अधिक देखने का अवसर मिल गया।

एक दिन एक बौद्ध मन्दिर (वाट सिरी सकेत) देखने गये। वह एक पहाड़ी पर अवस्थित था। पहाड़ी फखाओं थोंग कहलाती थी। बड़ा सुन्दर देवालय था। पहाड़ी की चोटी पर से चारों ओर के दृश्य बड़े सुन्दर दिखाई देते थे। हमें बताया गया था कि अंधेरा हो जाने पर वहां से बैंकाक की शोभा देखते ही बनती है। झिल-मिल करते रंग-विरंगे प्रकाश में वह नगरी बड़ी रहस्यमय और रोमांचकारी लगती है। ऐसे आकर्षण को हम कैसे छोड़ सकते थे। इसलिए हम वहां देर तक रुके। वास्तव में जैसा सुना

८० : दिव्य जीवन की झांकियाँ

था, वैसा ही पाया। ऐसा लगा, मानों ऊपर का विस्तृत आकाश अनंत गुना सुषमा-युक्त होकर नीचे आ गया है।

लौटे तो रात के आठ बजे थे। सोचा कि मण्डी से कुछ फल लेते चलें। मेरे साथी और मैं, दोनों ही शाम को भोजन नहीं करते थे। फल और दूध लेते थे। मण्डी पर कार रुकवा कर फल खरीदने गये। हमारे साथ वहां के एक भारतीय मित्र थे।

मण्डी में भांति-भांति के फल थे। आम और पपीते थाईलैण्ड के मशहूर हैं। कई दुकानों पर घूम कर हमने आम और पपीते लिये और जैसे ही चलने को हुए कि एक स्यामी महिला हमारे पास आई। उनके हाथ में तीन आम थे उन्हें हमारी ओर बढ़ा कर स्यामी भाषा में कुछ कहने लगीं। मित्र ने बताया, वह कहती हैं, “आप ये आम ले लीजिये।”

हम समझे कि कोई फेरीवाली महिला है। देखने में वह देहातिन मालूम होती थी। आम छोटे-छोटे और शकल में बड़े अजीब से थे। हमें अच्छे नहीं लगे। हमने कहा, “नहीं, ये आम हमें नहीं चाहिए। हम खरीद चुके हैं।”

मित्र ने जब हमारी बात उससे कही तो वह बोलीं, “मैं ये आम आपको देना चाहती हूं। ये मेरे अपने बाग के हैं और पूरे बाग में जो सबसे अच्छा पेड़ है, उसके हैं। आप लोग बाहर से आये मालूम होते हैं। मैं चाहती हूं, आप इन आमों को खायें और देखें कि हमारे देश में आम कितने बढ़िया होते हैं।”

वह अघेड़ स्यामी महिला एक सांस में यह सब कह गई। हमने एक बार फिर उसके हाथ के आमों को देखा। उनका रूप-रंग और बनावट बहुत ही अनाकर्षक थी, पर उसका आग्रह देख कर हमने सोचा कि लें लें। मित्र के द्वारा पुछवाया कि वह उनके लिए कितने

दिव्य जीवन की झांकियां : ८१

पैसे लेंगी तो उनका चेहरा कुछ उदास हो आया। बोलों, “दाम ? कैसे दाम ? मैं तो ये आम आपको भेंट में दे रही हूँ।”

हमने धन्यवादपूर्वक आम ले लिये। बड़ी कृतज्ञता से उन महिला ने सिर झुकाया और धीरे से मुड़ कर सामने की अपनी दुकान पर चली गई।

थाई-भारत कल्चरल लाँज लौट कर हम लोग जब फल खाने बैठे तो भेंट में मिले आम सामने थे। अनिच्छापूर्वक उन्हें तराशा और जब उन्हें खाया तो अपने अविवेक पर लज्जित हो उठे। वे आम मिश्री जैसे मीठे थे और उनमें एक ऐसी महक थी, जो अबतक खाये आमों में हमें पहले कभी नहीं मिली थी।

उस अपूर्व भेंट को देने वाली महिला की भावना को हमने कितना गलत समझा, उसके साथ कितना रुखाई का व्यवहार किया और आमों के बाहरी रूप को देखकर उनकी कितनी अवगणना की, इसका स्मरण करके आज भी मन भारी हो जाता है और जब उस महिला के ये शब्द याद आते हैं—“ये मेरे अपने बाग के आम हैं, सबसे अच्छे पेड़ के हैं—आप खायें और देखें कि हमारे देश में कितने बढ़िया आम होते हैं” तो देश-प्रेम की एक साकार प्रतिमा सामने आ खड़ी होती है।

: ३ :

झील की बेटी

डल झील काश्मीर का बहुत बड़ा आकर्षण है। अपने काश्मीर-प्रवास में हम लोग अक्सर शिकारे में झील की सैर करने चले जाते थे। एक दिन शाम खाली थी। संयोग से हमारा परिचित शिकारेवाला गफफारा मिल गया। फिर क्या था, बैठे उसके शिकारे

८२ : दिव्य जीवन की झांकियां

में और घूमने चल पड़े। गप्फारा बोला, “साब, मैं आज आपको तैरती खेती दिखाऊंगा।”

इतना कहकर उसने कोई तान छेड़ दी और मौज से नाव को खेता हुआ काफी दूर ले गया। उसके बाद सैर कराता हुआ वहां पहुंचा जहां पानी की सतह के ऊपर कई प्रकार की खेती हो रही थी। नाव को रोककर बोला, “यहां आप उतर पड़िये और देख लीजिये कि इंसान ने कैसा करिश्मा कर दिखाया है।”

हम लोगों ने डरते-डरते नीचे पैर रक्खा कि कहीं धरती के अन्दर न चले जायं, पर हमारा वह भय निराधार निकला। फिर तो बेधड़क इधर घूमे, उधर घूमे। नीचे काफी गहरा पानी था। ऊपर घास की मदद से मिट्टी जमा कर खेती की गई थी। घूम-घामकर फिर नाव में आ गये और अब कमल के फूलों और बड़े-बड़े पत्तों के बीच से नाव को निकालता हुआ गप्फारा दूसरी ओर को चला।

इतने में देखते क्या हैं, एक पतली तीर जैसी नाव पर एक काश्मीरी किशोरी खड़ी हम लोगों की ओर देख रही है।

गप्फारा ने कहा, “साब, जानते हैं, यह लड़की कौन है?”

हमारे इंकार करने पर बोला, “यह यहां के जमींदार की लड़की है। ये जो खेत आप देखते हैं, सब इसी की जायदाद है।”

हमारी कुछ दिलचस्पी पैदा हुई। गप्फारा ने शिकारे की रफ्तार धीमी कर दी। बोला, “साब, यह बहुत बड़े आदमी की लड़की है। शाम को यहां आती है और घर के लिए साग-तरकारी वगैरा ले जाती है। अभी इसकी शादी नहीं हुई।”

हमने कहा, “इसे यहां बुलाओ।”

दिव्य जीवन की झांकियां : ८३

गप्फारा बोला, “जनाब, इसका बड़ा ऊंचा दिमाग है। आप बुलाइये। आवेगी नहीं।”

हमने कहा, “नहीं, हम नहीं बुलावेंगे। तुम बुलाओ।”

गप्फारा मुस्कराया। नाव को उसने रोक दिया और लड़की को आने का संकेत किया।

लड़की कुछ सहमी। लगा, वह नहीं आवेगी। तब गप्फारा ने उससे काश्मीरी में कुछ कहा। उसके बाद वह अपनी पतली-सी नाव को खेकर सपाटे से हमारे पास आ गई।

वह झील की बेटो थी। डल जितनी सुन्दर थी, बेटो उससे भी अधिक सुन्दर थी। बड़ी स्वस्थ और निर्भीक। शहजादी जैसी लगती थी।

वह हमारी भाषा नहीं जानती थी। हम उसकी भाषा नहीं जानते थे। हमने गप्फारा की मारफत उससे पूछा कि उसके पिता कहां रहते हैं, उनके पास कितनी खेती है, कितनी उससे आमदनी हो जाती है, घर में कितने लोग हैं, झील में अकेले आते उसे डर तो नहीं लगता, आदि-आदि।

उसने मुस्कराहट के साथ सारी बातों के उत्तर दिये।

उसकी नाव में मक्की के भुट्टे और कमलगटे रक्खे थे। हमने कहा, “क्या ये भुट्टे और कमलगटे हमें नहीं दोगी?”

उसने बहुत से भुट्टे और कमलगटे हमारी ओर बढ़ा दिये। हमने उसे रोका, कहा, “हमने तो योंही कहा था, हमें नहीं चाहिए। तुमने अपने घर के लिए इन्हें इकट्ठा किया है। ले जाओ।”

पर वह नहीं मानी। उसने जबर्दस्ती काफी भुट्टे और कमलगटे हमारी नाव में पहुंचा दिये।

८४ : दिव्य जीवन की झांकियां

“इनके पैसे कितने हुए ?” हमने पूछा ।

“पैसे ? कैसे पैसे ?” उसने गप्फारा के द्वारा विस्मय से उत्तर दिया ।

“यह जो चीजें तुमने दी हैं, उनके ?” हमने पैसे लेने के लिए आग्रह करते हुए कहा ।

उसकी मुस्कराहट गंभीरता में परिणत हो गई । माथे पर बल डालकर, मुंह बनाकर, उसने कहा, “आपने हमें क्या समझ रक्खा है । आप हमारे खेत पर आये हैं । हमारे मेहमान हैं । आपके मन में पैसे देने की बात आई कैसे ?”

इतना कहकर उसने डांड उठाया और हम कुछ कहें कि उससे पहले ही अपनी तीर-सो नाव को तेजी से चलाकर अपने रास्ते पर बढ़ गई ।

तभी झील में एक साथ लहरें उठीं, मानों अपनी बेटी पर गर्व करते हुए मां पुलकित हो रही हो ।

: ४ :

प्रवासी की ममता

हम लोग बर्मा में घूम रहे थे । कई दिन रंगून में रहे । वहां से मांडले गये, फिर मेमियो । लौटते में टाँजी जाने का विचार किया । टाँजी बर्मा के शान राज्य की राजधानी है और प्राकृतिक दृष्टि से बड़ी ही मनोरम है । मांडले के चलकर रात को ठीक बारह बजे थाजी स्टेशन पहुंचे । मांडले-रंगून-लाइन पर थाजी एक बड़ा स्टेशन है । वहां हमें गाड़ी बदलनी थी । आगे खिलौने-जैसी गाड़ी दो इंजनों के जोर पर पहाड़ी चढ़ाई पर ले जाती थी । हम अपना सामान उठवाकर उस प्लेटफार्म पर ले गये, जहां से

हमारी गाड़ी जाती थी। फर्स्ट क्लास का डिब्बा बन्द था। उसे रेल के अधिकारी से खुलवा कर उसमें बिस्तर लगाया। थोड़ी देर में कुछ और मुसाफिर आ गये। रात को पौने चार बजे गाड़ी रवाना हुई।

एक तो भीड़, दूसरे खटमलों के मारे नींद नहीं आई। जरा-सी आंख लगी कि फिर खुल गई। दिन का प्रकाश फूट आया था। उठकर शौचालय गया तो देखता क्या हूं, उसमें पानी नहीं है। अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो मैंने गार्ड को तलाश करके उसे अपनी कठिनाई बताई और पानी की व्यवस्था करने को कहा।

गार्ड बोला, “आपको थाजी पर कहना चाहिए था। यह तो पानी का स्टेशन नहीं है। मैं कुछ नहीं कर सकता।”

इतने में गाड़ी चलने का समय हो गया। मैं अपने डिब्बे में आ गया।

अगले स्टेशन पर मैंने फिर गार्ड को पकड़ा। कहा, “देखिये, जनाव, पानी का कोई-न-कोई इंतजाम करना ही होगा। हमारे लिए असंभव है कि हम निवृत्त न हों और हाथ-मुंह न धोवें।”

अधेड़ उम्र के उस बर्मी गार्ड ने अपनी लाचारी बताते हुए कहा, “आप बेबात अपने को और मुझे परेशान कर रहे हैं। बताइये, मैं क्या कर सकता हूँ?”

मैंने कहा, “आप और कुछ नहीं कर सकते तो एक बाल्टी पानी ही डिब्बे में रखवा दीजिये। बाद में पानी का स्टेशन आने पर टंकी को भरवा दीजिये।”

उसने कहा, “इस लाइन पर आगे कोई भी बड़ा स्टेशन नहीं है।”

८६ : दिव्य जीवन की झांकियां

“नहीं है तो हम क्या करें ! पानी का बंदोबस्त आपको करना ही होगा ।” मैंने कुछ झुंझलाकर कहा ।

तब गार्ड ने मुझे साथ लेकर बाल्टी की खोज में सारे स्टेशन का चक्कर लगाया, स्टेशनमास्टर से मिला, दूकानदार से पूछा, पर बाल्टी कहीं न मिली, न कोई और बर्तन ही ।

अब क्या हो ? मेरे साथी और मैं, दोनों परेशान थे । कोई ९ बज गये थे और हम लोग बिना निबटे, बिना हाथ-मुंह धोये, हैरान घूम रहे थे ।

इतने में देखते क्या हैं कि गाड़ी पीछे को हटी । यह क्या ? वह पीछे हटती गई । जहां पीछे इंजन को पानी देने का नल था, वहां जाकर हमारा डिब्बा खड़ा किया गया और टंकी को उस नल से भर दिया गया । गार्ड वहीं खड़ा था । मुस्कराकर बोला, “क्यों, अब खुश हैं ?”

हमने उसे धन्यवाद दिया तो वह बोला, “नहीं, धन्यवाद की कोई बात नहीं है । मुझे इस बात का बड़ा दुख है कि आपको इतनी असुविधा हुई ।”

एक बजकर चालीस मिनट पर हम अपने अंतिम स्टेशन श्वेयौं पर पहुंचे । आराम से सामान उतारा । वापसी के लिए टिकट का प्रबन्ध करने स्टेशनमास्टर के कमरे में गये । इसमें थोड़ी देर लग गई और तब तक टौंजी जाने वाली सारी सवारियां घिर गई ।

गार्ड ने हमारी कठिनाई देखी तो बोला, “आप चिन्ता न करें, मैं कुछ कराऊंगा ।”

थोड़ी देर में मिलटरी का एक ट्रक आ गया । संयोग से उसका ड्राइवर भारतीय था । गार्ड ने उससे बात की और हमें टौंजी ले जाने के लिए वह राजी हो गया । वैसे ट्रक टौंजी ही जा रहा था,

लेकिन यदि गार्ड ने आग्रह न किया होता तो वह ड्राइवर हमें हर्गिज न ले जाता ।

हम लोग बहुत थक गये थे । गार्ड हमें रेस्तरां में ले गया । कॉफी मंगवाई । जब हम पैसे देने लगे तो बोला, “यह नहीं होने का । आप इस देश में हमारे मेहमान हैं ।”

फिर कुछ रुककर बोला, “भाईसाहब, मैं चार साल हिन्दुस्तान में रह चुका हूं और आधा हिन्दुस्तानी हूं यानी मेरे पिता हिन्दुस्तानी यहूदी थे और मां बर्मी हैं ।”

इतना कहते-कहते उसकी आंखें गोली हो गईं । शायद उसका मन बीते दिनों में पहुंच गया था ।

इसके बाद हमारो सुखद यात्रा की कामना करते हुए उसने हमें बिदा किया ।

: ५ :

रूसी ड्राइवर की चिन्ता

मास्को के निवास के दिनों की घटना है । अपने जीवन के अंतिम वर्षों में लेनिन जहां रहे थे, उस देहात को देखने मैं गया । ‘सोवियत लेखक संघ’ ने कार की व्यवस्था कर दी थी और एक परिवाचिका मेरे साथ भेज दी थी । उस ऐतिहासिक स्थल को देख कर जब हम लौटे तो रास्ते में परिवाचिका की मारफत ड्राइवर ने मुझसे पूछा कि क्या लेखक के नाते मैं उस जगह को देखना पसन्द नहीं करूंगा, जहां रूस के नामी लेखक मैक्सिम गोर्की रहे थे ?

मैंने कहा, “वाह, नेकी और पूछ-पूछ । अगर वहां चल सको तो जरूर चलो ।”

८८ : दिव्य जीवन की झांकियां

ड्राइवर ने तो पूछा ही इस इरादे से था कि वहां ले जाय। हम लोग मास्को आये और वहां बिना रुके गोर्की के देहात की ओर बढ़ चले। वह मास्को से दूसरी दिशा में कोई ४०-५० किलो-मीटर की दूरी पर था।

शहर से बाहर आते ही ड्राइवर ने गाड़ी की रफ्तार तेज कर दी। शायद उसके मन में समय की बचत की बात रही होगी। सड़क अधिक चौड़ी नहीं थी। भीड़-भाड़ ज्यादा न होने पर भी कुछ मोटर, बसें, ट्रक आदि आ-जा रहे थे। ड्राइवर बड़ा कुशल था। उन्हें बचाता हुआ वह तेजी से आगे बढ़ता गया।

आठ-दस मील इस तरह निकले होंगे कि अचानक हमारी गाड़ी के सामने सामान से लदा एक ट्रक आ गया। उससे आगे निकालने के लिए ड्राइवर ने कार को सड़क के एक ओर किया और ज्योंही वह ट्रक के पास से गुजरने को हुआ कि दैवयोग से ट्रक के ड्राइवर ने अपनी गाड़ी को जरा उसी ओर किया, जिधर से हमारी मोटर निकल रही थी।

यह इतना अप्रत्याशित रूप से हुआ कि अगर हमारा ड्राइवर पूरी तरह सावधान न रहा होता तो दोनों गाड़ियों में बुरी तरह टक्कर हो जाती, क्योंकि दोनों ही तेज रफ्तार से चल रही थीं।

ट्रक से बचाने के लिए हमारे ड्राइवर ने गाड़ी को उस पतली-सी सड़क के और किनारे कर दिया। इस प्रयास में कार के बाईं ओर के पहिये सड़क के किनारे की नाली में चले गये। बड़े जोर का झटका लगा। बेचारी दुबली-पतली परिवाचिका पीछे की सीट से उछल कर आगे ड्राइवर की सीट पर जा गिरी। मुझे लगा कि गाड़ी अब उलटी, अब उलटी। उसके दाएं पहिये ऊंचाई पर थे, बाएं निचाई पर। गाड़ी की रफ्तार पहले से कम हो गई थी, फिर भी उसे धीमी नहीं कहा जा सकता था।

कुछ गज तक गाड़ी इसी हालत में आगे बढ़ती रही। ड्राइवर अपनी जगह पर बड़ी मुस्तैदी से बैठा था और बिना तनिक भी घबराए उस संकट से बाहर निकलने के लिए कोशिश कर रहा था। मेरा दिल कांप रहा था।

आगे जाकर उसने गाड़ी की रफ्तार को एक दम तेज कर दिया और गाड़ी को एक साथ मोड़ देकर झटके-से नाली से निकाल सड़क पर ले आया।

सड़क पर आकर उसने गाड़ी को खड़ा कर दिया। मुझे चिन्ता हुई कि कहीं उसके चोट न आई हो। मैंने परिवाचिका के द्वारा उससे पूछा कि कहीं उसके चोट तो नहीं लगी।

ड्राइवर ने बड़ी व्यग्रता से कहा, “आप बताइये। आप तो सकुशल हैं न?”

मेरे ‘हां’ कहने पर उसने चैन की सांस ली। बोला, “शुक्र है कि आप सही-सलामत बच गये। आप हमारे मेहमान हैं। अगर आपको कुछ भी हो गया होता तो हमारा मरना हो जाता। हम और हमारा मुल्क कहीं मुंह दिखाने लायक न रहता।”

मैं उस अघेड़ रूसी की ओर देखता रह गया। उसने जो कहा था, वह महज शिष्टाचार की बात नहीं थी। उसके पोछे गहरी भावना थी।

उसके बाद वह मुझे गोर्की के गांव ही नहीं ले गया, कलाकारों की बस्ती, विशाल आरोग्य भवन आदि और भी कई स्थान दिखाये।

: ६ :

निर्मोही का मोह

कुछ समय पहले की बात है। हम लोगों की टोली गंगोत्री गई हुई थी। वहां से गोमुख का कार्यक्रम बनाकर सोचा कि

१० : दिव्य जीवन की झांकियां

गंगोत्री के प्रमुख साधुओं से मिल लेना चाहिए। साधु यों वहां कई थे, पर उनमें से स्वामी मस्तरामजी की कुटिया हमारे स्थान से बहुत दूर नहीं थी। हम तीन जने उनके यहां पहुंचे। छोटी-सी कुटिया में धूनी की आग के सामने एक दिगम्बर साधु बैठे थे। मुंह पर मूँछें-दाढ़ी, सिर पर लम्बी जटाएं, ढलती उम्र। प्रणाम करके हम तीनों उनके सामने बिछी चटाई पर बैठ गये। स्वामी जी ने पूछा, “कहां से आये हैं?”

हममें से एक ने कहा, “दिल्ली से। हमलोग घुमक्कड़ हैं। पिछले दिनों बदरी केदार चले गये। इस बार इधर चले आये।”

धूनी में जो लक्कड़ जल रहा था, वह शायद गीला था। धुएं के बादल उठ रहे थे। हवा का रुख स्वामीजी की ओर था, इसलिए सारा धुआं उनके ऊपर जा रहा था। उनकी आंखें लाल-सुर्ख हो रही थीं और उनसे पानी बह रहा था। हमने कहा, “महाराज, आप थोड़ा इधर हो जायें।”

बोले, “यह मिट्टी का शरीर है, इसकी क्या चिन्ता करना!”

वह ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। अपनी जगह से टस-से-मस न हुए। हमने समझ लिया कि ये यथानाम तथा गुण हैं।

थोड़ी देर खामोशी रही। उसे तोड़ते हुए मैंने कहा, “महाराज, हम लोग अपनी आत्मिक उन्नति चाहते हैं। उसका उपाय क्या है?”

उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, “घरबार छोड़कर यहां आ जाओ।”

मैंने कहा, “हम निवृत्तिमार्गी नहीं हैं। चाहते हैं, दुनिया में रहें, अपना काम करें, साथ ही आत्मिक उन्नति भी करें।”

“यह असंभव है” बड़े आत्म-विश्वास से वह बोले ।

“पर स्वामीजी,” मैंने कहा, “हमारे सामने महात्मा गांधी की मिसाल है । उन्होंने संसार नहीं त्यागा । देश की आजादी के लिए और मानव की भलाई के लिए बराबर लड़ते रहे, लेकिन इतना होते हुए भी उन्होंने वह आत्मिक उन्नति की कि कोई क्या करेगा ।”

“ठीक है,” उन्होंने गंभीरता से कहा, “गांधीजी बड़े थे, बहुत बड़े थे, पर वह हमारी योग की परिभाषा में योगी नहीं थे । बिना घरबार के और दुनिया के मोह को छोड़ कोई योगी कैसे हो सकता है ?”

उनकी आकृति कुछ कठोर हो आई । सिर को खुजाते हुए बोले, “घर पर रहोगे तो चंडिकाएं तुम्हें चूस डालेंगी । कहीं का न छोड़ेंगी । मोह-माया की रस्सी बिना काटे आत्मिक उद्धार कदापि नहीं हो सकता, तुम जैसे सेठों का तो कदापि नहीं ।”

हम समझ गये कि उन्होंने हमें कोई बड़ा उद्योगपति मान लिया है । शायद वही बात उनके दिमाग में चक्कर लगा रही थी । तिरस्कार भाव से आगे बोले, “तुम लोग सारी जिंदगी नित्यानवै के फेर में पड़े रहोगे । भूल-भुलैया में से निकल नहीं पाओगे ।”

हमने कहा, “महाराज, हम में से कोई भी सेठ नहीं है । हम तीनों लेखक और पत्रकार हैं ।”

हमारे इतना कहते ही उनका रुख बदल गया ।

“अच्छा, तो तुम लोग सरस्वती-पुत्र हो । तुम्हारा उद्धार जल्दी हो सकता है । लेखक दुनियादारी से कुछ ऊपर होता है । इसलिए वह बंधनों से जल्दी छूट सकता है ।”

९२ : दिव्य जीवन की झांकियां

इसके बाद उन्होंने अपनी अनुभूतियां बताते हुए कहा, “मुझे देखो। छोटी उमर में ही घरबार से मन उचट गया। दुनिया फीकी लगने लगी। एक दिन बिना किसी से कहे-सुने घर से चल पड़ा। तीरथ किये, फिर यहां आ गया। गर्मियों में यहां रहता था। जाड़े आने पर उत्तरकाशी चला जाता था। पर अब तो मन यहां कुछ ऐसा रम गया है कि अपने राम का कहीं भी आने-जाने को जी नहीं करता। गर्मी, जाड़े, बरसात, बारहों महीने यहीं रहते हैं। तुम लोग यहां कबतक रहोगे ?”

हमने कहा, “महाराज, कल तो हम गोमुख जा रहे हैं। दो दिन बाद लौट कर आगे का कार्यक्रम बनावेंगे।”

“अच्छा, कल गोमुख जा रहे हो !” कुछ व्यग्रता से उन्होंने कहा, “देखो रास्ते में चीड़वासा को धर्मशाला के पास मेरा शिष्य सदाशिव रहता है। उससे मिल लेना। बड़े ऊंचे दर्जे का है। पहले मेरे साथ यहीं रहता था। उमर उसकी कुछ भी नहीं है, पर सारे धर्म-ग्रंथ उसने पढ़ डाले हैं। उसे जाने क्या हुआ है कि आदमी की छाया से दूर भागता है। हमने बहुतेरा समझाया, बहुतेरा रोका, लेकिन वह माना नहीं, चला गया।”

इतना कहते-कहते उनका गला भर आया। अवरुद्ध कण्ठ से बोले, “वह ऐसी जगह चला गया है, जहां किसी का पहुंचना बड़ा मुश्किल है। न खाने की फिकर, न पीने की। देह में दम रहा तबतक हम उसे खाने का सामान पहुंचा आते थे, पर अब उतना चला-फिरा नहीं जाता। रास्ता भी बड़ा खराब है। बोझी पैसे बहुत लेता है। पता नहीं, उसका क्या हाल होगा !”

वह इतने विह्वल हो उठे कि आगे शब्द मुंह से नहीं निकले। आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। रोते-रोते बोले, “वेद, उपनिषद्, उससे कुछ भी तो नहीं बचा। तुम उससे जरूर मिलना।”

ममता का ज्वार और चढ़ा। फिर तो बालक की तरह उनकी हिलकी बंध गई। हम लोगों को काटो तो खून नहीं। हमने विषय बदलने की कोशिश की, पर उनका मन तो जैसे एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो गया था। हिलकियों के बीच बोले, “अभी उसकी मर्सें भी तो नहीं भीगी हैं। जरूर पूर्व जन्म का पुण्यात्मा रहा होगा, नहीं तो इतनी जल्दी उसके ज्ञान-चक्षु कैसे खुल जाते।”

हम समझ गये कि स्वामीजी ने अपने शिष्य से सहारे की उम्मीद रखी होगी। सहारा छिन जाने से उनकी यह हालत हो गई है। यह तो दुनियादारी की बात हुई। जो हो, अब हम से न रहा गया। हमने कहा, “महाराज, अभी तो आप हमसे कह रहे थे कि मोह-माया छोड़ो। अब आप ही इतने मोह-ग्रस्त हो रहे हैं! शिष्य की याद आते ही आपका क्या हाल हो गया।”

स्वामीजी को जैसे कुछ चोट लगी। बोले, “यह मोह नहीं है।”

“तो क्या है?” हमने पूछा।

“कुछ है,” वह बोले, “तुम इसे समझ नहीं सकते। यह प्रेम है, बड़ा ऊंचा प्रेम है।”

आगे बहस करना बेकार था। बहस से कुछ सिद्ध भी होने वाला नहीं था।

थोड़ी देर बाद जब हमने स्वामीजी से बिदा ली तब भी वह कुछ खोये हुए-से थे।

×

×

×

उस दिन समाचार मिला कि मस्तरामजी अब नहीं रहे। पुरानी घटना याद हो आई। लगता है, दुनिया छोड़ना बड़ा कठिन है, पर उससे भी कठिन मोह-माया के बंधनों को तोड़ना है।

: ७ :

परदेशी का प्यार

बैंकाक (थाईलैण्ड) में हम लोग 'थाई-भारत-कल्चरल लाँज' के मेहमान थे । लेकिन वहां के सभी प्रमुख भारतीय हमसे मिलने आते थे और हमारे लिए जो कुछ कर सकते थे, बड़े स्नेह से करते थे ।

उनमें एक सज्जन थे मुनीश्वर सिंह । उन्होंने हमें भाई का-सा प्रेम दिया । वह किसी समय में वहां के बहुत बड़े व्यापारी थे । लेकिन भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया । उनका सारा व्यापार चौपट हो गया । काम-धन्धा कुछ नहीं रहा । अपने नाते-रिश्तेदारों से भी उन्हें वितृष्णा हो गई । विवाह उन्होंने किया नहीं था । एक तरह से वह अकेले रहते थे ।

एक दिन उन्होंने हमें अपने यहां भोजन करने के लिए बुलाया । हमने कहा, "जब घर में कोई है नहीं तो क्यों बेकार झंझट में पड़ते हो ?"

पर वह नहीं माने । हम लोग उनके यहां पहुंचे । इधर-उधर की बातें करने लगे । थोड़ी देर में उन्हें भोजन का संकेत मिला । हम दूसरी मंजिल पर गये और जब भोजन की मेज पर बैठे तो दंग रह गये । सारी भारतीय चीजें थीं । दाल, चावल, साग-सब्जी । खाया तो घर का-सा स्वाद आया । स्वाभाविक रूप से यह जानने की इच्छा हुई कि वह किसने बनाया है । लगा, हो न हो, कोई भारतीय रसोइया होगा । लेकिन जब पूछा तो मालूम हुआ कि उनके यहां एक स्यामी महिला काम करती है और उसी ने ये सब चीजें बनाई हैं । मुनीश्वर सिंह ने कहा, "शुरू-शुरू में हमने इसे खाना बनाना सिखा दिया । अब तो यह इतनी होशियार हो गई है कि सब कुछ अपने आप तैयार कर लेती है ।"

भोजन परोसने के लिए वह स्त्री सामने आई। देखने में बड़ी सौम्य और भोली। उसके चेहरे से वात्सल्य छलकता था।

“इस स्त्री का अपना घर है।” मुनीश्वर सिंह ने कहा, “पति हैं, बच्चे हैं। सबेरे जल्दी उठकर घर का काम निबटा डालती है। पति काम पर चले जाते हैं। बच्चे स्कूल चले जाते हैं। यह यहां आ जाती है।”

फिर कुछ रुक कर बोले, “इस घर के साथ इसका बड़ा आत्मो-यता का नाता जुड़ गया है। मुझे खाने के लिए जब देर हो जाती है तो यह बड़ी नाराज होती है। जब आता हूं तो कहती है, ऐसा भी क्या, कम-से-कम खाना तो आदमी को समय पर खा ही लेना चाहिए। सारा घर इसी पर छोड़ा हुआ है। क्या मजाल कि एक चीज भी इधर-उधर हो जाय, कुछ नुकसान हो जाय। बड़ी अच्छी तरह से घर की देखभाल करती है।”

भोजन में उसने खीर बनाई थी। बहुत आग्रह करके उसने हमें खिलाई।

भोजन के उपरान्त हम चले आये। उस महिला से एक बार फिर मिलने की इच्छा हुई, लेकिन भाग-दौड़ में समय नहीं मिला।

जिस दिन सबेरे हम कम्बोज के लिए रवाना हो रहे थे, उससे पिछली रात को मुनीश्वर सिंह मिलने आये। उनके हाथ में एक पैकेट था। उसे हमारी ओर बढ़ाते हुए बोले, “यह लीजिये, इसे उस स्यामी स्त्री ने आपके लिए भेजा है।”

“इसमें क्या है?” हमने पूछा।

“आप ही देख लीजिये।”

पैकेट खोला तो देखते ही रह गये। खूब घी डालकर उसने

१६ : दिव्य जीवन की झांकियां

हमारे खाने के लिए हलुवा बनाया था। कई दिन हमारे काम आ सके, इसलिए काफी परिमाण में बनाकर भेजा था।

मुनीश्वर सिंह बोले, “उसने कहा है, मुझसे हलुवा बनाना नहीं आता। उनसे कह दें कि अगर अच्छा न लगे तो बुरा न मानें।”

उनकी बात सुनकर हम स्तब्ध रह गये। उस बहन का प्रेमल चेहरा सामने आ गया। उस पर मातृत्व की रेखाएं कितनी गहरी उभरी हुई थीं, यह शब्दों में बताना कठिन है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हलुवा बहुत अच्छा बना था और कई दिन तक हमारे काम आया।

: ८ :

आसान रास्ता

द्वितीय महायुद्ध के दिनों की घटना है। उन दिनों यातायात की बड़ी कठिनाइयां थीं। रेलें घण्टों देर से आती थीं और कभी-कभी रेल का टिकट मिलना बन्द हो जाता था। एक बार मैं अपनी पत्नी के साथ दिल्ली से टीकमगढ़ जा रहा था। आगरा में हमें अपने कुछ सम्बन्धियों से मिलना था। इसलिए किसी गाड़ी से वहां पहुंच गये। आगरा से मेल द्वारा ललितपुर जाने का निश्चय किया, जो टीकमगढ़ का रेलवे स्टेशन था। रेल में बैठने के लिए राजा की मण्डी पहुंचे। मेल के आनेमें थोड़ी ही देर थी। मैंने पत्नी से सामान सम्हालने को कहा और स्वयं टिकट लेने चला गया। टिकट-घर पर पहुंचा तो मालूम हुआ कि ललितपुर का टिकट बन्द है। इतने में गाड़ी आ गई। मैं उल्टे पैरों दौड़ा कि कहीं पत्नी रेल में सामान न रखवा लें। प्लैटफार्म पर आया तो मेरी आशंका ठीक निकली। पत्नी एक डिब्बे में अधिकांश सामान रखवा कर अन्दर जा चुकी थीं। मैंने कुली से सामान उतारने

को कहा, पर बिस्तर-पेटियाँ इतनी फंस गई थीं कि उन्हें निकालना आसान न था। गाड़ी वहाँ बहुत थोड़ी देर रुकती थी और भीड़ का ठिकाना न था।

अब क्या हो ? हार कर बाकी चीजें भी अन्दर डलवाईं। मैंने भीतर जाकर सामान संभाला तो वच्ची की गद्दी और रबर आदि का वण्डल नहीं दिखाई दिया। मैंने कुली से उसे तलाश करने को कहा। पत्नी ने उसे इधर-उधर खोजा, पर कहीं न मिला। कुली ने बाहर देखा तो वहाँ भी नहीं था। उसी परेशानी में गाड़ी ने सीटी दे दी। टिकट के सम्बन्ध में गार्ड को सूचित करना रह गया। मजे की बात यह हुई कि जिस वण्डल के लिए इतनी हैरानी हुई थी, वह मेरी बगल में था।

झांसी तक बराबर भीड़ रही। वहाँ पर जैसे ही कुछ लोग उतरे, मैं बाहर आया और सीधा गार्ड के पास गया। उसे सारी बात बता कर मैंने टिकट-चेकर से टिकट बनवा देने को कहा। गार्ड बोला, “यहाँ गाड़ी बहुत देर रुकती है। आप जाइये, टिकट ले आइये।”

“पर हम लोग तो आगरा से आ रहे हैं ?” मैंने कहा।

वह बोला, “कोई बात नहीं है। जाइये, देर मत कीजिये।”

मैं वहाँ से दौड़ा। ज्योंही फाटक पर पहुँचा कि थोड़ी दूर पर खड़े टिकट कलक्टर ने आवाज दी, “कहाँ जाते हैं ?”

“टिकट लेने। गार्ड ने कहा है।” मैंने जवाब दिया।

“सुनिये।” वह बोला।

पर मेरे पास रुकने का समय कहाँ था। मैं दौड़ा-दौड़ा बुकिंग आफिस पहुँचा। संयोग से टिकट मिल गये। लेकर लौटा। पर टिकट-कलक्टर फाटक पर खड़ा मेरी राह देख रहा था। मेरे पास आते ही बोला, “टिकट दिखाइये ?”

९८ : दिव्य जीवन की झांकियां

मैंने टिकटें उसे दे दीं। टिकटों को देखते हुए उसने पूछा, “कहां से आ रहे हैं?”

मैंने कहा, “आपको उससे क्या?”

“जी नहीं, मेरी बात का जवाब दीजिये।” वह गंभीर होकर बोला।

मैंने कहा, “मुझे हैरान न कीजिये। मेरी गाड़ी छूट जायगी। लाइये, टिकट दीजिये। आप समझ लीजिये कि मैं यहीं से जा रहा हूँ।”

पर उसने टिकट नहीं दिये। बोला, “मेरे साथ आइये।”

वह मुझे प्लेटफार्म पर ले गया और मेरे देखते-देखते उसने तीन-चार टिकट-चेकर इकट्ठे कर लिये।

उससे बोला, “इन महाशय को जरा देखिये, मैं पूछता हूँ कि कहां से आ रहे हैं, तो यह ठीक जवाब ही नहीं देते।”

सबने मेरी ओर देखा। मुझे चुप देखकर टिकट-क्लक्टर बोला, “अच्छा, आप इन सबके सामने कह दीजिये कि आप यहीं से जा रहे हैं।”

मैंने कहा, “आप व्यर्थ की बात कर रहे हैं। जब मेरे पास टिकट है तो आपका सवाल करना एकदम बेमतलब है।”

मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। वह अपनी पर।

झगड़ा उसी डिब्बे के सामने हो रहा था जिसमें हम लोग बैठे थे। मेरी पत्नी ने मुझे रेल के बाबुओं से घिरा देखा तो वह उतर कर वहां आ गई। टिकट-क्लक्टर कह रहा था, “आपको बताना ही होगा कि कहां से आ रहे हैं।”

मैं कह रहा था, “आप बेकार का सवाल पूछ रहे हैं। मैं कहता हूँ, हमारे पास टिकट है या नहीं?”

गाड़ी छूटने का समय हो रहा था। मेरे पास टिकट थे, अतः टिकट-कलक्टर कुछ कर भी नहीं सकता था ? उसने मेरी ओर इस तरह देखा, मानो वह कहता हो, “तुम झूठे हो, पर खैर, मैं छोड़े देता हूँ।”

उसने टिकट मुझे दे दिये। टिकट लेकर जब हम डिब्बे की ओर बढ़े तो मैंने अनुभव किया, मेरे सिर पर जाने कितना बोझ रक्खा है। परिस्थिति से बचने के लिए मैंने जो आसान रास्ता अंगीकार किया था, वह गलत था। गाड़ी चलने पर सहसा एक विचार मन में आया, मैं कांप उठा। यदि वह टिकट कलक्टर हमारे साथ डिब्बे में आ गया होता और उसने साथ के मुसाफिरों से पूछ-ताछ की होती तो हमारी क्या हालत हुई होती !

: ९ :

विदेशी से सबक

कुछ समय पहले की बात है। मैं यूरोप के प्रवास पर गया था। कई देशों में घूमते हुए रूस की राजधानी मास्को में पहुंचा। उस नगरी में बहुत-सी साहित्यिक संस्थाएं हैं। एक दिन मेरे एक मित्र मुझे ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में ले गये। वहां हिन्दी का कार्य मुख्य रूप से भारत के अनन्य मित्र और हिन्दी के परम अनुरागी श्री चेलिशेव देखते हैं। ज्योंही वह मिले, बोले, “यशपालजी, आज आप बड़े शुभ दिन यहां आये हैं।”

मैंने कहा, “क्यों, क्या बात है ?”

पुलकित होकर उन्होंने कहा, “हिन्दी के कुछ कवियों की चुनी हुई कविताओं का रूसी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ है। आज ही वह पुस्तक आई है। पहली प्रति मैं आपको ही भेंट करता हूँ।”

१०० : दिव्य जीवन की झांकियां

इतना कहकर उन्होंने एक प्रति पर प्रिय मित्र यशपाल जैन को सप्रेम भेंट लिखकर मुझे दे दी। मेरे साथ एक भारतीय सज्जन थे। चेलिशेव ने उनसे कहा, “मैं आपका नाम नहीं जानता। कृपा करके अपना नाम एक कागज पर लिखकर मुझे दे दीजिये, जिससे एक प्रति मैं आपको भी भेंट कर दूँ।”

उन सज्जन ने अपना नाम लिखकर दे दिया। चेलिशेव ने कागज हाथ में लेकर जैसे ही उसे देखा, उनकी त्यौरी चढ़ गई। बोले, “मैंने आपसे अपना नाम लिखने को कहा था तो मेरा आशय यह था कि आप हिन्दी में लिखकर दें। हिन्दी आपकी राष्ट्र-भाषा है।”

उन सज्जन ने कहा, “जी, बात यह है कि मैं हिन्दी कुछ-कुछ बोल तो लेता हूँ, पर लिख नहीं पाता।”

चेलिशेव का चेहरा लाल हो गया। बोले, “आप भारतीय हैं और कहते हैं कि आप हिन्दी नहीं लिख सकते! अच्छी बात है, आप नहीं लिख सकते तो ठीक है, मैं लिखने का प्रयत्न करूँगा।”

कहने की आवश्यकता नहीं कि उन रूसी महानुभाव ने उन भारतीय का नाम पुस्तक पर हिन्दी में लिखा और शुद्ध हिन्दी में लिखा।

चेलिशेव ने जो कहा, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। उनकी भाव-भंगिमा को तो भूलना और भी कठिन है, जिसमें किसी भी स्वाधीनचेता राष्ट्र के लिए एक बड़ी भारी शिक्षा निहित थी।

: १० :

गार्ड की सदाशयता

अपनी टोली के साथ हम दक्षिण में घूम रहे थे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने हमारा सारा कार्यक्रम निश्चित कर

दिया था और तीर्थों के दर्शन के साथ-साथ हम उनके प्रमुख हिन्दी केन्द्र भी देख रहे थे।

धूमते-धूमते त्रिचनापल्ली पहुंचे। वहां से हमारे चलने की तिथि और गाड़ी तय थी और अगले स्थान पर उसकी सूचना थी। हिन्दी प्रचार सभा के भवन से रवाना हुए तो हमें केवल एक टैक्सी मिली, जब कि जाने वाले कोई बारह व्यक्ति थे और उन सबका सामान भी था।

गाड़ी छूटने का समय बहुत कम रह गया था। सोचा, टैक्सी पर अधिक-से-अधिक सामान लाद दिया जाय और एक जिम्मेदार व्यक्ति कुछ अन्य साधियों को लेकर जायं। स्टेशन पहुंचकर टैक्सी को फौरन लौटा दें और सामान को गाड़ी पर रखवा लें।

झटपट सामान लादा गया और टैक्सी रवाना कर दी गई। वह टैक्सी स्टेशन से फिर लौटी। सौभाग्य से एक टैक्सी और मिल गई और हम सब स्टेशन पहुंच गये। वहां जाकर देखा कि हमारा सामान स्टेशन के बाहर रक्खा है और बुजुर्ग सज्जन बैठे-बैठे हमारी राह देख रहे हैं।

असल में उन्होंने सोचा था कि हम सब समय पर पहुंच तो पायेंगे नहीं। इसलिए सामान को प्लेटफार्म पर ले जाने और फिर दूसरी गाड़ी के लिए दूसरे प्लेटफार्म पर लाने में बेकार परेशानी और खर्चा होगा। इसलिए उन्होंने सामान बाहर ही रहने दिया।

यह देखकर बड़ी खीज हुई। पर गाड़ी छूटने का समय हो गया था। मैंने कहा, “गाड़ी जरूर मिल जाती, अगर आपने सामान प्लेटफार्म पर पहुंचवा दिया होता।”

उन सज्जन ने कहा, “गाड़ी हर्गिज नहीं मिल सकती थी।”

बहस करना व्यर्थ था। मैंने सोचा, एक बार प्रयत्न कर देखना

१०२ : दिव्य जीवन की झांकियां

चाहिए। एक साथी को लेकर मैं प्लेटफार्म की ओर दौड़ा। जिस समय हम वहां पहुंचे, गार्ड सीटी देकर हरी झंडी हिला रहा था और गाड़ी रेंगने लगी थी।

मैं भाग कर गार्ड के पास गया और उससे कहा, “गार्ड साहब, हमारी टोली को इस गाड़ी से बहुत जरूरी जाना है, पर टैक्सी की कठिनाई से हम स्टेशन देर में पहुंचे। अगले स्थान को हम खबर दे चुके हैं। यदि हम इस गाड़ी से न गये तो हमारा आगे का सारा कार्यक्रम बिगड़ जायगा। लोग हैरान होंगे सो अलग।”

मैं एक सांस में यह सब कह डाला। गार्ड दाक्षिणात्य था। उसने पूछा, “आपकी सवारियां कहां हैं?”

मैंने कहा, “आ रही हैं।”

“लाइए, जल्दी लाइये।” इतना कहकर उसने सीटी दी, लाल झंडी दिखाई और गाड़ी को रोक दिया। बोला, “आप सामान लिफ्ट से ले आइये। मैं कहे देता हूं।”

इतना कहकर उसने तीन-चार बोझियों को आवाज देकर इकट्ठा किया और लिफ्ट से फौरन सामान ले आने को कहा। बोझियों के साथ हम भी दौड़े। जब लिफ्ट से सामान आने लगा तो रास्ते में लिफ्ट रुक गई। तब बोझियों ने सिर पर सामान उठाया और गाड़ी पर पहुंचाया।

गार्ड ने कहा, “आप किसी भी डिब्बे में सामान पटकवा लें। अगले स्टेशन पर सब ठीक हो जायगा। देखिये, गाड़ी बहुत लेट हो गई है।”

हमने जहां मौका लगा, वहीं सामान डलवाया और सारी टोली को गाड़ी में सवार करा दिया।

गार्ड खड़ा-खड़ा देख रहा था। वह हमारे पास आया और बोला, “क्यों, सब ठीक हो गया न?”

हमने कहा, “यह सब आप की मेहरबानी है। हम आपके बहुत ही आभारी हैं। आपको जो असुविधा हुई, उसके लिए माफ करें।”

उसने कहा, “नहीं, कोई बात नहीं है। आप सब इस गाड़ी से चल सके और आपका कार्यक्रम बिगड़ा नहीं, इसको मुझे खुशी है।”

सीटी देकर गार्ड ने जब घड़ी देखी तो पन्द्रह मिनट की देरी हो गई थी। उसने हरो जंडी दिखाई और मुस्करा कर हमारी ओर देखते हुए अपने डिब्बे में चढ़ गया।

: ११ :

सिक्के का दूसरा पहलू

मास्को से दस-बारह मील पर अवस्थित देहात के एक परिवार से हमें निमन्त्रण मिला। वैसे मैं वहाँ के कई गांव, जिन्हें वे लोग कॉलखोज यानी कलैक्टिव फार्म के नाम से पुकारते हैं, देख चुका था, फिर भी उस दिन निमन्त्रण को मैं अस्वीकार न कर सका। एक दिन सवेरे कार से हम चार जने मास्को से रवाना हुए। मेरे अतिरिक्त दो भारतीय मित्र थे, जिनमें एक महिला भी थी। हमारा रुसी मेजबान गाड़ी चला रहा था। लगभग नौ बजे उस फार्म में पहुंच गये।

घर के सब सदस्यों ने हमारा स्वागत किया। गृहिणी और बच्चे हम भारतीयों को अपने बीच पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़े उल्लास से अपना घर दिखाया, जो बहुत ही सुसज्जित था। जगह अधिक नहीं थी—बैठक, सोने का कमरा, रसोईघर, गुसलखाना, शीशालय, बस। साथ ही ठण्डे-गर्म पानी के नलों और गैस के चार चूल्हों की सुविधा थी।

१०४ : दिव्य जीवन की झांकियां

घर दिखाने के बाद वे लोग हमें अपने किचन-गार्डन अर्थात् साग-भाजी के बगीचे में ले गये। ऐसे बगीचे वहां प्रायः सभी घरों के साथ होते हैं और सारे फार्म को सुन्दर-आकर्षक बनाने में उनका बड़ा हाथ रहता है। इन बगीचों में वे साग-भाजी ही पैदा नहीं करते, भांति-भांति के रंग-बिरंगे फूल भी उगाते हैं, जिनकी शहर और देहात में काफी मांग रहती है। शायद ही कोई ऐसा घर मिलेगा, जिसकी खिड़कियों तथा दीवार-गिरी पर मनोरम फूलों से सजे फूलदान न रखे हों। फूलों का मौसम बीत जाने पर बाजार में कागज के फूल आ जाते हैं और उनसे सजावट का काम लिया जाता है।

उन दिनों बगीचे बहार पर थे। हमें यह देखकर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ कि मौसमी साग-भाजियों तथा फूलों के साथ-साथ उस बगीचे में सेब के पेड़ भी लगाये गये थे, जिन पर छोटे-छोटे फल आ रहे थे।

हमारे साथी भारतीय मित्र मास्को में काम करते थे और रूसी अच्छी तरह जानते थे। उनकी मदद से गृहस्वामिनी हमें सारी बातें समझाती रही। उसने बताया कि फूलों से उन लोगों को कुछ आमदनी भी हो जाती है और साग-भाजी कुछ तो घर में पका ली जाती है, कुछ बाजार में बिकने चली जाती है।

बगीचे की शोभा और घर की सुघड़ता को देखकर बड़ा अच्छा लगा।

इस सबमें कोई एक घंटा निकल गया। घर की मालकिन, जो २४-२५ बरस की रही होगी, बोली, “अब आप लोगों को भूख लग आयी होगी। चलो, कुछ खा-पी लो।”

हम लोग बैठक में गये, जिसके एक हिस्से में मेज-कुर्सियां डाल कर भोजन-कक्ष बना लिया गया था। वहां मेज पर पहले से ही

दिव्य जीवन की झांकियां : १०५

खाने की चीजें सजी रखी थीं। हम सब वहां जाकर बैठ गये। मैंने देखा कि अधिकांश पदार्थ सामिप थे। मैंने कहा, "मैं तो शाकाहारी हूं। यह सब नहीं चलेगा।"

गृहस्वामिनी पहले तो कुछ द्विविधा में पड़ी, फिर बोली, "कोई बात नहीं है। हमारे घर में गाय है। उसका दूध निकाल कर मैं अभी आपके लिए दूध की कुछ चीजें बनाये देती हूं। आपको थोड़ा इन्तजार करना होगा।"

इतना कहकर वह उठी। गाय की बात सुनकर मेरे मन में उत्सुकता हुई। मैं और भारतीय मित्र साथ गये। घर के पास ही एक कोठरी में गाय बंधी थी। उस हृष्ट-पुष्ट तीस-पैंतीस सेर दूध देने वाली गाय को देख कर मैं चकित रह गया और जब मैंने उसे ध्यान से देखा तो विस्मय के साथ आनन्द भी हुआ। वह श्यामा गाय थी। मैंने कहा, "आप लोग बड़े भाग्यवान हो, जो आपके यहां ऐसी गाय है।"

उसने पुनः पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

मैंने कहा, "हमारे देश में श्यामा गाय बड़ी शुभ मानी जाती है। कहते हैं, जिस घर में ऐसी गाय होती है, उस घर में बड़ी बरकत रहती है।"

यह सुनकर उस रूसी तरुणी की आंखें चमक आयीं, चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। बोली, "सचमुच, हम लोग बड़े सुखी हैं। मेरे पति बड़े भले और मेहनती हैं। दो बच्चे हैं। और भला क्या चाहिए?"

इसके बाद मैं और मेरे मित्र खाने के कमरे में लौट आये। आधे घण्टे के भीतर गृहस्वामिनी भी दूध और उसकी कुछ चीजें लेकर आ गयी।

१०६ : दिव्य जीवन की झांकियां

परिवार के उस मधुर वातावरण में हम लोगों ने अच्छी तरह से जलपान किया। जलपान क्या, पूरा खाना ही समझिए। पेय की बात आयी तो मैंने सहज भाव से कह दिया, “चाय, कॉफी में से जो भी हो, दे दीजिए।” इस पर घर की मालकिन ने कहा, “चाय, कॉफी क्यों, दूध पियो।”

और उसने एक बड़े बर्तन में दूध भर कर दे दिया। मैंने कहा, “इतना दूध तो मैं नहीं पी सकता।”

मेरी पीठ पर हाथ रखकर वह बोली, “नहीं, पियो। और कुछ खाते नहीं। दूध नहीं पियोगे तो तन्दुरुस्त कैसे रहोगे?”

खाने के बाद चलने को हुए तो भारतीय मित्र ने इशारा किया कि यादगार के रूप में बच्चों को कुछ दे देना चाहिए। भारतीय महिला ने अपने बटुए को खोलकर भारत के कुछ सिक्के निकाले और मेरी ओर बढ़ा दिये। मैंने उनमें से स्वतंत्र भारत का एक पैसा लेकर एक बच्चे को देने के लिए गृहस्वामिनी को दिया और बताया कि उस पर जो अशोक-स्तम्भ तथा शेर के चिह्न हैं, वे धर्म-राज्य के द्योतक हैं। महिला ने उस पैसे को एक बच्चे को दे दिया और रूसी भाषा में मेरी कही हुई बात उसे समझा दी।

इसके उपरान्त भारतीय महिला ने एक इकन्नी दी। उसे रूसी युवती ने अपने हाथ में लेकर जैसे ही उलट-पलट कर देखा कि उसे मेज पर पटक दिया, मानो वह कोई अवांछनीय और त्याज्य वस्तु हो। मैंने पूछा, “क्यों, क्या बात है?”

बड़ी गम्भीर मुद्रा से उसने कहा, “आपने देखा, इस पर किसकी तस्वीर है?”

इतना कहते-कहते उसके चेहरे पर तनाव आ गया। बोली, “इस पर बरतानिया के शहंशाह की तस्वीर है, जिसके मुल्क ने

दिव्य जीवन की झांकियां : १०७

आपके ऊपर इतने दिनों राज्य किया। गुलामी के दिनों में ऐसी चीजों का चलना समझ में आता है, पर मैं पूछती हूँ कि आजाद होने के बाद आप इन्हें कैसे बर्दाश्त कर रहे हैं ?”

मैंने उससे कहा कि इससे यही जाहिर होता है कि हमारी किसी से दुश्मनी नहीं है और कि हम लोग बहुत ही सहिष्णु हैं, पर मैं जानता हूँ, इससे देश-भक्ति में डूबी उस बहन का समाधान क्या होना था !

उस नवयुवती की आकृति को याद करता हूँ तो आज भी मेरी आत्मा कांप उठती है।

: १२ :

आदमी आदमी एक से

थाइलैंड की राजधानी बैंकाक की बात है। एक दिन हम लोग थाई-भारत-कल्चरल लॉज के संचालक पं० रघुनाथ शर्मा से बात कर रहे थे। उनकी पत्नी पास ही बैठी थीं। चर्चा चल रही थी कि पीढ़ियों से रहते हुए भी हिन्दू लोग वहाँ के निवासियों को अच्छत जैसा मानते हैं, यहाँ तक कि उनके हाथ का छुआ खाने से भी आपत्ति करते हैं। मैंने जिज्ञासा-वश योंही शर्माजी की पत्नी से पूछा, ‘भाभीजी’ आप भी स्यामी स्त्रियों से छूत-छात का भाव रखती हैं ?

मेरे इस सवाल पर वे थोड़ा ठिठकीं, फिर मुस्करा फर बोलीं, “हां, रखती तो हूँ। पर कुछ दिन पहले हमारी दुकान पर एक स्यामी लड़की काम करती थी। बड़ी भोली, बड़ी सीधी थी। हजार समझाओ, पर समझ ही नहीं पाती थी कि उसकी छुई हुई चीजों को खाने से किसी को परहेज हो सकता है। झट चीजों को छू लेती थी। उससे कुछ कहते थे तो भोलेपन से उन चीजों को देखती थी कि कहीं वे सचमुच खराब तो नहीं हो गई हैं। फिर

१०८ : दिव्य जीवन की झांकियाँ

छोटे बच्चे की तरह कहती थी, “नहीं, वे बिगड़ी नहीं हैं। आप देख लो।” उसकी सरलता और भोलेपन पर हँसी आ जाती थी और उन चीजों को खाने में बुरा नहीं लगता था।”

उनके यह सुनाते-सुनाते शर्माजी को एक घटना याद आ गई। बोले, “जब जापानी लोग बर्मा से यहां आये तो अपने साथ अक्याब से एक बालक को पकड़ लाये। उसे उन्होंने साथ रक्खा। लेकिन जब वे यहां से जाने लगे तो समस्या हुई कि उस बालक को कहां छोड़ें। कुछ लोगों ने सलाह दी कि हमारे यहां छोड़ दें। सो बालक हमारे घर आ गया और घर के बच्चे की तरह रहने लगा। अपने ही बर्तनों में खाता-पीता था। एक दिन उसे बुखार आ गया। बुखार मियादी था। उन्हीं दिनों अचानक पता चला कि वह मुसलमान है। उसका नाम अहमद था। हमें इनसे (पत्नी से) डर हुआ, पर इनके चेहरे पर शिकन तक नहीं आई। बोलीं, “मुसलमान है तो क्या हुआ! अपने बच्चों की तरह घर में रहा है। अब भी रहेगा।” उसका नाम ‘सबीर’ रख दिया गया। उसकी इन्होंने ठीक वैसे ही देखभाल की, जैसे अपने बच्चों की करती हैं। वह बालक कोई तीन महीने हमारे साथ रहा। बाद में उसके घर वालों को पता लग गया तो उसे उसके घर भेज दिया।”

मैं सोचने लगा, हमारे संस्कार कैसे भी हों, हर किसी के अन्दर इंसान होता है, जो आदमी आदमी के बीच के फासले को नहीं मानता।

: १३ :

श्रद्धा

हम लोगों की टोली उत्तराखण्ड की यात्रा कर रही थी। वहां के महान् तीर्थ केदारनाथ के दर्शन करने के बाद हम बदरीनाथ

जा रहे थे। रास्ते में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तीर्थ तुंगनाथ पड़ता था। वहां उत्तराखण्ड का सबसे अधिक ऊंचाई पर बना मन्दिर था। वहां की चढ़ाई इतनी मुश्किल है कि बहुत से यात्री वहां नहीं जा पाते।

हमें रास्ते की इस मुश्किल का पता था, पर हमारी टोली नहीं मानी। चल पड़ी। सचमुच चढ़ाई बड़ी विकट थी। एक-एक कदम पर सांस फूलती थी। शुरू में चीड़, देवदार तथा लता-गुल्मों की हरियाली और तरह-तरह के फूलों के कारण रास्ता विशेष अखरा नहीं, लेकिन आगे चलकर प्रकृति ने अपना वैभव समेट लिया और अब सामने सपाट पर्वत थे। हमारे पैर एक-एक मन के हो गये। चढ़ाई काफी शेष थी और हममें से प्रायः सभी का दम जैसे टूट रहा था। तभी देखते क्या हैं कि एक बहुत ही दुबका-पतला बूढ़ा हाथ की लाठी को टेकता, प्रकृति को चुनौती देता, आगे चला जा रहा है, चला जा रहा है। कमर उसकी झुकी थी, टांगें बेहद दुबली थीं। उसके पास पहुंचने पर हमने उसे नमस्कार किया, फिर पूछा, “क्यों बाबा, कितनी उमर के हो?”

बड़े ही सधे हुए स्वर में उसने कहा, “भैया, बहत्तर से कुछ ऊपर हूं।”

आगे हम कुछ कहें कि वह बोला, “तीसरी बार तुंगनाथ के दर्शन करने जा रहा हूं। भगवान् ने जिन्दा रक्खा तो फिर आऊंगा।”

हमारे पैरों को जैसे किसी ने अनजाने नई शक्ति से भर दिया। उस वृद्ध युवा के आत्म-विश्वास और श्रद्धा से तुंगनाथ की वह शेष दूरी इतनी सुगम हो गई कि हमें मालूम भी नहीं पड़ी।

११० : दिव्य जीवन की झांकियां

: १४ :

समर्पित व्यक्तित्व

लन्दन पहुंचने के तीसरे दिन अचानक शाम को फोन की घंटी बजी तो मैंने चोगा उठा कर पूछा, “कहिए, आप किसे चाहती हैं?”

“मैं यशपाल जैन से बात करना चाहती हूं।”

“जी, मैं बोल रहा हूं। आप?”

“मेरा नाम म्यूरियल लीस्टर है। आपका पत्र मुझे मिल गया है। अच्छा बताइये, हम लोग कब मिलें। मैं यहां एसेक्स में रहती हूं। शहर से यह जगह काफी दूर है। पर सुरंग की रेल से आने में आपको बहुत समय नहीं लगेगा। परसों शाम को चार बजे आ सकेंगे?”

“जरूर आ जाऊंगा।”

घर पहुंचने में कोई असुविधा न हो, इसलिए रास्ते की उन्होंने पूरी जानकारी दे दी।

अपने मेजबान के साथ जब मैं तीसरे दिन म्यूरियल से मिलने के लिए रवाना हुआ तो पानी पड़ रहा था। चालीस-पैंतालीस मील सुरंग की रेल से चलने के बाद हमने बस पकड़ी और बॉल्ड-विन रोड पर उतर कर शाम के घुँधलके और कोहरे में ४९ नम्बर जी कोठी का पता लगाने में काफी तपस्या करनी पड़ी।

संयोग से घर मिल गया। घंटो बजाई। घंटी की आवाज सुनते ही जिन्होंने दरवाजा खोल कर हमारा स्वागत किया वह स्वयं म्यूरियल लीस्टर थीं।

मैंने कहा, “हमें बड़ा खेद है कि यहां आने में दो घण्टे की देर हो गई। आप बुरा न मानें।”

वह मुस्करा कर बोलीं, “इसमें बुरा मानने की क्या बात है । आप मेंह बरसते में भी आ गये, यह हमारे लिए कम थोड़ा है ।”

दुबला-पतला शरीर, पर बेहद फुर्तीला, सौम्य, शांत, प्रेमल स्वभाव, अत्यन्त सादी पोशाक, यह थीं ७३ साल की म्यूरियल, जिन्होंने मकान में घुसते ही हमें जीत लिया । मेरे मेजवान ने मुझे अपनी बरसाती ओढ़ा दी थी, इसलिए मैं कम भीगा था । पर उनका अपना कोट पानी से सराबोर हो गया था । अन्दर कमरे में पहुंचते ही म्यूरियल ने उनके कोट पर ठीक वैसे ही हाथ फेरा, जैसे हमारे घरों में मां या बड़ी दादी बच्चों की पीठपर फेरा करती हैं । बोलीं, “ओफ, तुम तो एकदम भीग गये हो ।”

इतना कहते हुए उन्होंने सहारा देकर साथी का कोट उतर-वाया और हीटर के सामने कुर्सी की पीठ पर सूखने के लिए फैला दिया । जबतक वह सूख नहीं गया, वह वहीं बैठीं रहीं । उन्हें डर जो था कि कहीं असावधानी से हीटर की गर्मी कोट को झुलसाने दे ।

म्यूरियल गांधीजी की अनन्य भक्त थीं और मैं गांधीजी के देश से वहां पहुंचा था । बैठते ही गांधी जी पर चर्चा शुरू हो गई । वह किसी पुराने युग में पहुंच गईं । बोलीं, “सबसे पहले मैं गांधी जी से सन् १९२६ में मिली थी । उस समय मैं उनके साथ एक महीने साबरमती आश्रम में ठहरी थी । तब की एक-एक बात मुझे आज भी याद है । कितना ऊंचा था उसका व्यक्तित्व, कितना व्यापक था उनका प्रेम । मैं दूर देश से गई थी, कोई भी अपना परिचित वहां नहीं था, पर लगा, जैसे घर में और घरवालों के बीच में हूं ।.....”

वह कुछ खो-सी गईं, मानो उन दिनों की अनुभूतियों के स्पर्श का सुख अनुभव कर रही हों । फिर बोलीं, “सन् १९३४ में

११२ : दिव्य जीवन की झांकियां

फिर भारत पहुंची। उस समय बिहार के भूकम्प से बड़ी तबाही हो गई थी। गांधीजी मुझे बिहार ले गये। बाद में जब उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले में दौरा किया, तब भी मैं उनके साथ थी।”

उनके संस्मरणों का अन्त न था। यदि उनकी सत्तर साल की छोटी बहन डारिस वहां न आई होती तो घण्टों निकल जाते। बहन के आने पर वह सुस्थिर हुईं। बोलीं, “इस घर में मैं और मेरी यह बहन, दो जने रहते हैं। अपना सारा काम अपने हाथ से करते हैं। हमारे पास कोई नौकर नहीं है।”

डारिस ने हमें घर दिखाया। उस छोटे से मकान की ऊपर की मंजिल में म्यूरियल का कमरा था। उसमें सोने के पलंग की ओर संकेत करके डारिस ने कहा, इसे जान-बूझ कर इतना ऊंचा बन-वाया है। म्यूरियल को फूलों से बड़ा प्रेम है। वह सबेरे उठते ही बगीचे के रंग-बिरंगे फूलों को देखना पसन्द करती हैं और तुमने वह प्यारी घंटी देखी है, जो उन्हें भोर में जगाया करती है?”

इतना कह कर उन्होंने खिड़की के बाहर वह जगह दिखाई, जहां चिड़ियों के बैठने और चुगने की व्यवस्था थी। बोलीं, “बड़े तड़के यहां चिड़ियां आती हैं और अपने मधुर संगीत से चोंच की खटखट से बहन को जगा देती हैं।”

हम लोगों ने तीन घण्टे उन बहनों के साथ बिताये। मिल कर खाना तैयार किया, साथ बैठकर खाना खाया और जब वहां से चले तो उन्होंने ऐसे विदा किया जैसे सगी बहन भाई को विदा करती है।

दूसरी गोलमेज परिषद के दिनों में गांधीजी म्यूरियल के मेहमान रहे थे और शहर की मजदूरों की बस्ती में प्रेम और भाई-

चारे के प्रसार के लिए इस वहन द्वारा वनवाये किंग्सले हॉल में ठहरे थे। तीसरे दिन म्यूरियल ने स्वयं वहां जाकर हमें वह ऐतिहासिक स्थान दिखाया। बोलीं, “अब तो इस वस्ती की शकल ही बदल गई है। लन्दन में जो भयंकर आग लगी थी, उसमें यहां के सारे मकान जल कर खाक हो गये थे। बाद में पैसे वालों ने जमीन खरीद ली। बड़े-बड़े मकान खड़े हो गये। मजदूरों के छोटे-छोटे मकानों के बीच किंग्सले हॉल पहले बहुत बड़ा लगता था। अब वही बड़े-बड़े मकानों के बीच कितना छोटा लगता है ! पर मकान से क्या, वह छोटा हो या बड़ा, असली चीज तो काम है। हम लोग पैसे की तंगी होते हुए भी बिना रंग, वर्ग और विश्वास के भेदभाव के आज भी अपना काम करते हैं।”

फिर कुछ रुक कर बोलीं, “यहाँ के मजदूर दिल से गांधीजी को प्यार करते थे, पर पैसे वालों में वह बात नहीं है।.....जो हो, अगर थोड़े लोग भी आस्था के साथ गांधीजी की जलाई ज्योति को प्रज्वलित रखेंगे तो वह बुझेगी नहीं।”

म्यूरियल अब इस संसार में नहीं हैं, पर उनके शब्द आज भी मेरे कानों में गूँजते हैं।

: १५ :

सेतुबन्ध के निर्माता

लेनिनग्राद में निवा नदी के किनारे हरमिताज के निकट अवस्थित ओरियण्टल इंस्टीट्यूट पहुंचा तो एक रूसी युवक ने भारतीय पद्धति से हाथ जोड़कर मेरा अभिवादन करते हुए हिन्दी में कहा, “नमस्कार, यशपालजी ! आइये, मेरा नाम जोग्राफ है। मुझे बड़ी खुशी है कि आप हमारे यहां पधारे।”

११४ : दिव्य जीवन की झांकियां

उस तरुण का उच्चारण बड़ा शुद्ध था और उसके बोलने के ढंग से यह नहीं लगता था कि वह कोई नौसिखिया है। हम लोग हिन्दी में ही बात करते हुए अन्दर पहुँचे। जोग्राफ ने संस्था का परिचय देते हुए बताया कि उसमें पूर्वी देशों की विशेषकर भारतीय भाषाओं का अध्ययन, अनुसंधान और प्रकाशन होता है। कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले पूर्वी देशों की पाण्डुलिपियों के संग्रहालय के रूप में इसकी स्थापना हुई थी। अब यहाँ पर हिन्दी, उर्दू, फारसी, पंजाबी, मराठी, तेलगू, संस्कृत, पाली, अरबी, आदि भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद तथा प्रकाशन का कार्य हो रहा है।

संस्था का परिचय अभी समाप्त नहीं हुआ था कि इतने में एक सज्जन आये। मझौला कद, उन्नत ललाट, चमकती आँखें, फुर्तीला बदन। वह सूट पहने थे। जोग्राफ ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और परिचय कराते हुए कहा, “आप प्रो० वी० आई० कल्यानोव हैं।”

इन महानुभाव का नाम मैं पहले से जानता था। मुझे यह भी पता था कि वह संस्कृत और हिन्दी धारा-प्रवाह बोलते हैं और महाभारत के अनुवाद का कार्य उन्हीं के द्वारा हो रहा है। ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट में मुख्यतः उन्हीं से मिलने गया था।

पारस्परिक अभिवादन के बाद हम लोग बैठ कर बात करने लगे। इधर-उधर की चर्चा के उपरान्त मैंने उनसे पूछा, “आपको महाभारत का अनुवाद करने की प्रेरणा क्यों हुई?”

उन्होंने उत्तर दिया, “इसलिए कि वह भारतीय संस्कृति का विश्वकोश है।”

“अब तक आप कितना अनुवाद कर चुके हैं?”

वह बोले, “आदि-पर्व पूरा हो चुका है। वह छपकर बाजार

में आ गया है। आजकल मैं 'सभा-पर्व' का अनुवाद कर रहा हूँ। यह भी पूरा होने को है। कितना भरा-पूरा भण्डार है आपके पुरातन साहित्य का।"

इतना कहते-कहते उनके चेहरे पर हर्ष की रेखा उभर आई, जैसे वह अनुभव कर रहे हों कि उत्तम साहित्य देश-काल की सीमा से परे होता है।

फिर कुछ रुक कर बोले, "हमारे प्रोफेसर...ने, जो सोवियत संघ की एकादमी आव साइंसेज के सदस्य हैं, बौद्ध धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया है और कई पुस्तकें लिखी हैं।"

उन्होंने प्रोफेसर का नाम कुछ इस ढंग से लिया कि मेरी समझ में नहीं आया। वह नाम था भी कुछ जटिल-सा। मैंने कहा, "आप इस नाम को मेरी डायरी में लिख दीजिये।"

उन्होंने बड़े सुन्दर देवनागरी अक्षरों में लिखा—श्रीमदाचार्य श्चेबेत्स्कि।

'श्रीमदाचार्य' शब्द पर मैं चौंक पड़ा। मैंने कहा, "यह तो संस्कृत और भारतीय संस्कृति का शब्द है।"

उन्होंने कहा, "जी हां, अपने यहां के 'थियोडोर' शब्द के लिए मुझे यही पर्याय अधिक उपयुक्त लगता है और मैं इसी शब्द का प्रयोग करना पसन्द करता हूँ।"

जोग्राफ ने सभी भारतीय भाषाओं के विभागीय अधिकारियों को वहां एकत्र कर लिया था। मेरे पास की कुर्सी पर एक रूसी बहन बैठी थीं। उनके जिम्मे बंगला विभाग था। जब उनका परिचय कराया गया तो मुस्करा कर प्रो० कल्यानोव बोले, "इनका नाम स्वेतेविदोवा है। जानते हैं, इसका अर्थ क्या है?"

मैंने कहा, "नहीं।"

११६ : दिव्य जीवन की झांकियां

बोले, “इसका अर्थ है, श्वेतदर्शन ।”

फिर हँसते हुए उन्होंने कहा, “मैं इनसे कहता हूँ कि आप अपना नाम ‘श्वेतदर्शना’ रख लो तो कितना अच्छा होगा ।”

मुझे याद आया, किसी ने बताया था कि प्रो० कल्यानोव भारत और भारतीय संस्कृति की ओर इतने आकर्षित हैं कि उन्होंने अपना नाम ‘कल्याणमित्र’ कर लिया है ।

स्वेतेविदोवा से नाम बदलने की बात उन्होंने विनोद में कही थी, लेकिन उनकी भाव-भंगिमा से यह छिपा न रहा कि भारत के प्रति उनकी आत्मीयता बड़ी गहरी है और भारत और रूस के सम्बन्धों को स्थायी बनाने के लिए वह सेतुबन्ध का निर्माण कर रहे हैं ।

उस मनीषी के साथ जो क्षण बीते वे आज भी याद आते हैं । लगता है, भूगोल की सीमाएं और मीलों की दूरी, मानवता के लिए कोई महत्त्व नहीं रखती और उदात्त भावनाएँ, बिना किसी भेदभाव के, मानव के हृदय को स्पन्दित करती हैं ।

: १६ :

मूक सेविका

विश्व-शान्ति के लिए काम करने वाले जिन लोगों से लंदन में मिलना हुआ, उनमें एक आंग्ल बहन की स्मृति आज भी मन पर बनी हुई है । शरीर से कुछ भारी, पर बेहद फुर्तीली कुमारी एडलम कभी की साठ पार कर चुकी थीं, पर उनकी उमंग और उत्साह को देखकर ऐसा लगता था कि कोई युवती भी उनके सामने क्या ठहर सकेगी । मेरे पास उनके नाम एक चिट्ठी थी और जब मैं फ्रेंड्स हाउस में जाकर उनसे मिला तो अपने देश की परम्परा के

विपरीत वह ऐसे खुल कर मिलीं, मानों हम एक-दूसरे से बहुत समय से परिचित हों। वह गांधीजी से मिली थीं और विनोबा के भूदान यज्ञ में उनकी बेहद दिलचस्पी थी। बोलीं, “हम लोग साथ-साथ भोजन करेंगे और आप एक घण्टे गांधी-विचार-धारा और भूदान पर बोलोगे। मैंने भी कई मुल्कों के भाई-बहनों को बुलाया है।”

थोड़ी देर में हम सब मिल कर पास के एक सस्ते रेस्तरां में गये। मैं घर से खाना खाकर गया था। उन लोगों ने खाना और मैंने बोलना आरंभ किया। गांधी-विचार-धारा और भूदान के मोटे-मोटे उसूल उन्हें बता कर अंत में मैंने समझाया कि गांधी और विनोबा दोनों की दृष्टि कितनी व्यापक है। दोनों का चरम लक्ष्य सबको सुखी बनाना और शान्ति स्थापित करना है। उन लोगों ने बहुत-से सवाल किये। अखीर जब हम चलने लगे तो कुमारी एडलम ने कहा, “हम शांतिवादी आणविक अस्त्रों के परीक्षण के विरुद्ध कल हाइड पार्क से ट्रेफलगर स्क्वायर तक एक जुलूस निकालेंगे। जुलूस में कुछ खास-खास नागरिक और पार्लिमेंट के सदस्य होंगे। आप भी उसमें शामिल हों। ऐसा करें कि ‘फ्रैंड्स हाउस’ आ जायें। वहां से हम साथ चले चलेंगे।”

अगले दिन जब मैं फ्रैंड्स हाउस पहुंचा तो देखता क्या हूं कि कंधे पर झोला डाले, एक स्वयं सेवक की भांति कुमारी एडलम तैयार खड़ी हैं। बोलीं, “मैं तो यहां से पैदल ही चलना पसंद करती, पर हमारे पास समय कम है। हमें हाइड पार्क कुछ पहले पहुंच जाना चाहिए। तुम्हें कुछ दोस्तों से मिला दूंगी।”

इतना कह कर वह तेज कदमों से बस के अड्डे की ओर बढ़ीं। बस में सवार होकर बोलीं, “हम लोगों के पास पैसे की

११८ : दिव्य जीवन को झांकियां

बड़ी तंगी रहती है। टैक्सी हम बहुत जरूरत पड़ने पर ही इस्तेमाल करते हैं।”

हाइड पार्क से हम सब शान्ति के नारे लगाते हुए ट्रेफ़लगर स्क्वायर पहुंचे, जहां एक विराट सभा हुई। कुमारी एडलम की एक विशेषता देख कर मैं दंग रह गया। वह मंच पर नहीं गई। उनके संगी-साथी जब धुंआधार भाषण दे रहे थे, वह महिला चुपचाप भीड़ के बीच घूमती हुई शान्ति के महान् ध्येय के लिए पैसे इकट्ठे कर रही थीं। वह मानती थीं कि जो आनन्द मूक सेवा में है, वह पद-प्रतिष्ठा में नहीं है।

तीसरी बार मिले तो बोलीं, “हमारा एक अखबार ‘पीस न्यूज’ निकलता है। उसके कार्यालय में नहीं चलोगे? वहां कई मित्रों से भेंट होगी।”

मेरे “हां” कहने पर वह एक तरुणी की भांति लम्बे-लम्बे डंग रखती हुई ‘पीस-न्यूज’ के दफ्तर की ओर चल पड़ीं। बोलीं, “पास ही है हमारा दफ्तर। क्यों, थक तो नहीं जाओगे?”

मैंने कहा, “मेरी चिन्ता न करें। मुझे पैदल चलने का बहुत अभ्यास है।”

“बड़ी खुशी की बात है। हम लोग कौड़ी-कौड़ी बचाते हैं। ज्यादातर पैदल चलते हैं। जरूरी हुआ तो ट्राम-बस का इस्तेमाल कर लेते हैं। जहां तक बनता है, टैक्सी नहीं लेते। हम लोग जरा झुक जायं तो खूब पैसा आ सकता है, पर वैसा पैसा किस काम का। उसूल की जिन्दगी बिताने में जो सुख मिलता है, वह पैसे के जोर पर जिन्दगी बिताने में कहां मिलता है।”

मैंने कहा, “पर.....”

उन्होंने मेरा वाक्य पूरा किया, “आप यही कहना चाहते हैं न

कि बिना पैसे के काम नहीं चलता। ठीक है। पैसे का बहिष्कार हमने भी कहां किया है ! असल बात यह है कि जीवन के साथ पैसे का संतुलन होना चाहिए। बड़ा इंसान है, पैसा नहीं, पर आज के समाज में पैसे ने इंसान और इंसानियत को दबा लिया है। लेकिन हम मानते हैं कि वह समय आयेगा, जब हमारे मूल्य बदलेंगे और हमारे आपसी संबंधों की बुनियाद में पैसा नहीं, मोहब्बत होगी।”

: १७ :

स्वदेश का अभिमान

यूरोप के प्रवास में रूस तथा चैकोस्लोवाकिया होता हुआ मैं स्विटजरलैंड पहुंचा। स्विटजरलैंड अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए सारे संसार में विख्यात है। उसके जूरिक नगर की महिमा का तो कहना ही क्या ! सबसे पहले मैं वहीं पहुंचा। जैसा सुना था, वास्तव में उसे वैसा ही पाया। लगता था, मानों प्रकृति ने वहां अपनी सुन्दरता खुले हाथों बिखेरी है।

जूरिक झील उस नगर का एक विशेष आकर्षण है। उसके चारों ओर पक्की सड़क है। झील के पानी में जहां भांति-भांति की नौकाएं संचरण करती हैं, वहां सड़क पर बसें दौड़ती हैं। कहीं भी चले जाइये। देश-विदेश के यात्रियों की वहां हर घड़ी भीड़ लगी रहती है।

शहर में घूमते समय मुझे बताया गया कि वहां का सबसे सुन्दर स्थल उतलीबर्ग है। जूरिक का वह सबसे ऊंचा पर्वत-शिखर है। बिजली की रेल चोटी तक जाती है। मैंने वहां जाने का निश्चय किया। बस द्वारा रेलवे स्टेशन के लिए खाना हुआ।

१२० : दिव्य जीवन की झांकियां

रेल के समय का पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुल ५ मिनट बाकी थे। मेरे बराबर की सीट पर एक स्विस् लड़की बैठी थी। मैंने जब उसे अपनी परेशानी बताई तो उसने कहा, “आप चिन्ता न करें। कण्डक्टर से कहती हूं कि वह अगले स्टेशन से आपको ट्रेन पकड़वा दे।” मैंने धन्यवाद दिया। लड़की ने कंडक्टर के पास जाकर उसे समझाया तो वह मान गया। उसने ड्राइवर से कह दिया। नतीजा यह हुआ कि उस भली लड़की की प्रेरणा से मुझे अगले स्टेशन पर ट्रेन मिल गई।

ऊपर तक का सारा रास्ता सचमुच बड़ा सुन्दर था। वह घने वन में होकर जाता था। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की निकुंजें देखकर ऐसा लगता था मानों हमारी आंखों के सामने कोई रंगीन चित्र हो। संयोग से उस समय मौसम सुहावना था। छोटे-छोटे बादल आकाश में अठखेलियां कर रहे थे, जिससे सारा वातावरण मनोरम बन गया था।

रेल में काफी भीड़ थी। जाने किन-किन देशों के नर-नारियों और बच्चों से वह खिलौने जैसी छोटी-सी गाड़ी भरी थी।

पच्चीस मिनट में ऊपर पहुंच गये। शहर से चोटी तक पैदल का भी पक्का रास्ता है। कुछ लोग पैदल आ रहे थे। असली आनंद तो पैदल चलने में ही था। मैं स्वयं पैदल चलना पसन्द करता, पर मेरे पास समय की कमी थी।

ऊपर जाकर चारों ओर को निगाह दौड़ाई तो ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई दिये जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। नीचे जूरिक झील के चारों ओर सारा नगर बिछा था। झील का नील वर्णी जल उसकी शोभा को और भी रंगीन बना रहा था। एक ओर को लिमत नदी मंथर गति से बह रही थी। जूरिक झील से सटो ओवर झील थी। दोनों मिलकर किसी सागर का आभास

करा रही थीं। एक ओर को लोजान नगर दिखाई दे रहा था, जहां का जलवायु सारे स्विटजरलैण्ड में बहुत अच्छा माना जाता है।

चोटी पर उत्तुल्लुत नामक होटल था, जिसके आगे जूरिक के प्रेसीडेंट स्व० डा० जेकब डुन्स की विशाल मूर्ति थी। मैं उस मूर्ति के पास खड़े होकर आल्प्स पर्वत-माला के दृश्य देखने लगा। सौभाग्य से बादल उस समम छूट गये थे और सूर्य के प्रकाश में वह हिम-मंडित पर्वत-माला अलौकिक सी लग रही थी।

मुझे वहां खड़ा देख कर एक स्विस युवती आई। बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बोली, “सामने उन पर्वतों को देखिये?”

मैंने कहा, “उन्हीं को तो देख रहा हूँ।”

“जानते हैं, वह हमारा आल्प्स है—प्यारा आल्प्स।” वह बोली, “ओह, कितना सुन्दर है कितना भव्य!”

मैंने कहा, “आप ठीक कहती हैं। सचमुच वह बड़ा सुन्दर है! बहुत अच्छा लग रहा है।”

वह देखिये उसकी चोटियाँ बर्फ से ढकी हैं। सूरज की रोशनी में सारी पर्वत-माला कैसी चमक रही है! ठीक-ठीक बताइये, आपको यह सब कैसा लग रहा है?” वह उछलती हुई बोली।

मैंने उस तरुणी के चेहरे की ओर देखा। खुशी के मारे, जैसे वह पागल हो रही थी। मैंने कहा, “जो चीज अच्छी है, वह तो अच्छी ही लगेगी।”

“अरे, वह देखो, वह देखो, सबसे ऊंची चोटी! हिम का किरीट धारे किस शान से सिर उठाये खड़ी है। है आपके देश में ऐसी चीज?”

१२२ : दिव्य जीवन की झांकियां

उसकी बात पर मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, “इनकी ऊंचाई कितनी है?”

बड़े गर्व से उसने कहा, “तीन हजार सात सौ...।”

मैंने कहा, “देवीजी, भारत में नीचे-से-नीचा पहाड़ी मुकाम भी छः-सात हजार फुट की ऊंचाई पर है। हिमालय की चोटियां तो २९-२९ हजार फुट तक गई हैं।”

कह नहीं सकता कि उस बहन ने मेरी बात सुनी या नहीं, क्योंकि उसका मन तो आल्प्स के सौन्दर्य में उलझा था और उसकी कल्पना उस पर्वत की सबसे ऊंची चोटी पर रम रही थी। वह बच्चे की तरह कूदती रही, कूदती रही।

मैंने अनुभव किया कि अपने देश पर हर किसी को अभिमान होता है।

: १८ :

“प्यार से बढ़कर दुनिया में और है क्या!”

यूरोप-प्रवास में लंदन के बाद मेरा अगला पड़ाव बर्लिन था। हैम्बर्ग पर रुकता हुआ मैं पश्चिमी बर्लिन के हवाई अड्डे पर उतरा। ठहरने के लिए जब सूचना विभाग में बात की तो अधिकारी ने बताया कि बर्लिन से मेरा कोपनहेगन (डेनमार्क) जाने का कार्यक्रम है और जिस जहाज से मेरा वहां जाने का बुकिंग है, वह पूर्वी बर्लिन के हवाई अड्डे से जायगा। अगर मैं पश्चिमी बर्लिन में ठहरूंगा तो मुझे टैक्सी से वहां जाना पड़ेगा और उसमें मेरा काफी पैसा लग जायगा। इसलिए अच्छा होगा कि पूर्वी बर्लिन में ठहरूं और जाने का समय आवे तो सस्ते में हवाई अड्डे की बस से चला आऊं।

पश्चिमी बर्लिन का हवाई अड्डा शहर से सटा हुआ था। सुरंग की रेल (ऊबान) का स्टेशन पास ही था। उससे मैं पूर्वी बर्लिन पहुंचा। सूचना-विभाग से ठहरने की व्यवस्था करने को कहा तो उन्होंने वहां के बढ़िया होटल जोहानिसहौफ में प्रबंध कर दिया।

होटल में पहुंचने के बाद मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या भाषा की आई। वहां के लोग जर्मन जानते थे और मैं उस भाषा से एकदम अपरिचित था। अंग्रेजी का प्रचलन बहुत कम था, बल्कि यह कहा जाय कि नहीं के बराबर था तो अत्युक्ति न होगी। लंदन में मुझे किसी ने बताया था कि विश्वविद्यालय में कुछ भारतीय छात्र हैं। संभव है, वे मेरी कुछ सहायता कर सकें। अतः कमरे में सामान जमा कर और थोड़ी देर विश्राम करके मैं विश्वविद्यालय पहुंचा, जो होटल के निकट ही नदी के किनारे पर था। पूछताछ करने पर भारतीय विद्यार्थियों का पता लग गया। विश्वविद्यालय की छुट्टी हो गई थी। मैं होस्टल पहुंचा। संयोग से दो भारतीय युवक मुझे अपने कमरे में मिल गये। उनमें एक गुजराती था और दूसरा महाराष्ट्र या और किसी प्रदेश का था। दोनों अपने-अपने बिस्तरों पर बैठे थे। नमस्कार करके मैंने उन्हें परिचय दिया और बताया कि मैं तीन दिन यहां ठहर कर पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन देखना चाहता हूं, पर जर्मन भाषा न जानने के कारण मुझे बड़ी असुविधा होती है। अन्त में मैंने उनसे अनुरोध किया कि यदि वे घण्टे दो घण्टे का समय मुझे दे सकें तो बड़ा अच्छा होगा।

दोनों लड़कों ने एक-दूसरे की ओर देखा और एक स्वर में में बोले, “माफ़ कीजिए, हम बोमार हैं।”

मैंने कहा, “यहां आसपास की जगहें दिखाने में भी मदद नहीं कर सकेंगे ?”

बोले, “बुखार के मारे हम बड़े लाचार हैं।”

१२४ : दिव्य जीवन की झांकियां

“यहां और कोई भारतीय है ?” मैंने पूछा ।

“हमें पता नहीं ।”

थोड़ी देर रुक कर मैं चला आया । सोच रहा था कि अब क्या होगा ? बिना किसी जानकारी के थोड़े से समय में क्या देखा जा सकेगा ? सोचते-सोचते जैसे ही विश्वविद्यालय के अहाते में आया कि कोई बीसेक साल का जर्मन युवक मेरे पास आया और अंग्रेजी में बोला, “आप हिन्दुस्तान से आये हैं ?”

मैंने कहा, “हां ।”

“यहाँ कोई काम है ?”

“नहीं, घूमने आया हूँ । यूरोप के कई देशों का भ्रमण कर आया हूँ । तीन दिन घूम कर डेनमार्क चला जाऊंगा ।”

इसके बाद मैंने उसे बताया कि यहां की भाषा न जानने के कारण मुझे बड़ी कठिनाई हो रही है । वह नौजवान इतना सुनकर बोला, “कोई बात नहीं । आप जबतक यहां रहेंगे, मैं आपकी मदद करूंगा ।”

वह युवक अच्छी अंग्रेजी नहीं जानता था, पर रुक-रुक कर, अथवा बिना क्रिया के शब्द बोल कर, अपनी बात कह देता था । उसने मेरा पता ले लिया और बोला, “आप होटल में चलिए । मैं घर होकर घण्टे भर में वहां आता हूँ ।”

उसकी बातचीत से मुझे अच्छा लगा । मैं होटल आ गया और अपने कमरे में जाकर चुपचाप विस्तर पर लेट गया ।

जरा-सी आंख झपी होगी कि घण्टी बजी । किवाड़ खोलने पर देखता क्या हूँ कि वही लड़का खड़ा है और कह रहा है, “चलो, चलें ।”

वह मुझे इधर-उधर घुमाता हुआ उस इलाके में ले गया, जो नया बसा था। पूर्वी बर्लिन की वहां सबसे चौड़ी सड़क थी। उसके दोनों ओर शानदार दुकानें, रेस्तोरां आदि थे। युवक ने बताया कि इस स्थान का निर्माण बड़े व्यवस्थित ढंग से किया गया है। शाम के समय यहां इतनी भीड़ हो जाती है कि आप यहां के लोक जीवन की बड़े सुन्दर ढंग से झांकी पा सकते हैं।”

उनकी बात सच थी। वहां सचमुच खूब भीड़ थी और सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष मौज से घूम रहे थे। बाजार के एक छोर से दूसरे छोर तक का चक्कर लगा कर हमने बूडापेस्ट होटल में भोजन किया। भोजन के बाद वह युवक अपने खाने के पैसे देने लगा तो मैंने उसे रोक दिया।

मेरी स्वाभाविक इच्छा उस रेखा को देखने की थी, जो पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन का विभाजन करती थी। मेरे आग्रह पर वह युवक मुझे वहां ले गया। सड़क पर एक बड़ा फाटक था, जिसके दोनों ओर संगीनधारी सैनिकों का पहरा था। जो भी गाड़ियां आती थीं, उन्हें रोक कर सैनिक पूछताछ करते थे, किसी-किसी की तलाशी भी लेते थे, तब जाने देते थे। वहां पहुंचते ही युवक की आंखें डबडबा आईं। बोला, “आपसे क्या कहूं ! यह रेखा हमारे शहर को ही नहीं बांटती, हमारे दिलों को भी चीरती है। पश्चिमी बर्लिन में हमारे नाते-रिश्तेदार हैं, हमारे दोस्त हैं, पर हम उनके लिए एक सेंट की भी चीज नहीं ले जा सकते।”

हम लोगों ने स्तब्ध भाव से उस रेखा को पार किया और पश्चिमी बर्लिन में पहुंच गये। युवक बोला, “आपसे सच कहता हूं, हमारे दिल में बड़ा दर्द है, पर क्या करें, कुछ समझ नहीं आता !”

अपनी व्यथा को अपने अन्तर में छिपाये वह युवक तीन दिन

१२६ : दिव्य जीवन की झांकियां

तक छाया की तरह मेरे साथ रहा। मैंने उससे कहा भी कि तुम्हारी पढ़ाई का हर्ज होता होगा, पर वह नहीं माना। मुस्करा कर बोला, “आप कौन यहां रोज-रोज आवेंगे।”

उस युवक ने तीन दिन के थोड़े-से समय में पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के प्रायः सभी दर्शनीय स्थान मुझे दिखा दिये। जब जब हम साथ साथ सुरंग की रेल या बस से विभाजक सीमा पार करते थे, उसके चेहरे पर विषाद की रेखा खिंच जाती थी। कहता था, “दुनिया में सबसे भयंकर पीड़ा गुलामी की है। उसकी कसक इन्सान को हर घड़ी सालती रहती है।”

जब मैं वहां से चलने को हुआ तो वह मुझे शहर के हवाई दफ्तर तक पहुंचाने आया। मेरे मना करते-करते टैक्सी का भाड़ा उसी ने चुकाया। हवाई अड्डे की बस में सामान रखकर जब मैंने उससे विदा ली तो उसने कस कर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने कहा, “तुमने मेरी इतनी मदद की। मैं तुम्हारा बड़ा ही अहसानमन्द हूँ।”

वह सिहर उठा। बोला, “आभारी तो मैं हूँ, जो आपने मुझे इतना प्यार दिया। प्यार से बढ़कर आखिर इस दुनिया में और है क्या !”

: १९ :

प्राणीमात्र का अनुरागी

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के प्रवास में हमने कम्बोडिया जाने का निश्चय किया। हम दो जने थे। बैंकाक से विमान द्वारा रवाना होकर सियमरीयप के छोटे-से हवाई अड्डे पर उतरे।

वहां से बस में बैठकर शहर गये। हमें बर्मा में किसी ने बताया था कि उस कस्बे में दक्षिण भारत के चैट्टियार नामक एक सज्जन

रहते हैं। उन्हें खोजते-खोजते बाजार पहुंचे। वहां उनकी दुकान थी। उस पर वह मिल गये। उनकी आकृति देखकर कुछ अजीब-सा लगा। वर्ण श्यामल, चेहरा रूखा, आंखें लाल, सादे बदन पर मात्र एक पाजामा। ऊपर का सारा हिस्सा खुला। नमस्कार करते हुए हमने अंग्रेजी में उनसे कहा, “हम हिन्दुस्तान से आ रहे हैं। यहां तीन दिन ठहर कर भारतीय संस्कृति के महान् केन्द्र अंकोरवाट, अंकौर थाम आदि देखना चाहते हैं। हमारे पास पैसे की तंगी है। कहीं सस्ते में ठहरने का प्रबन्ध हो जाय तो बड़ा अच्छा हो।”

आशा थी कि भारतीय होने के नाते वह बड़ी उमंग से हमारा स्वागत करेंगे और सहायता करने की बात कहेंगे, पर वह तो कुछ बोले ही नहीं। बड़ी मुश्किल से उनकी जबान खुली तो उन्होंने कुछ कहा, जो हमारी समझ में ही नहीं आया। ऐसा लगा, मानों वह उदासीन-से हों। थोड़ी देर वह चुप रहे, फिर उन्होंने अपनी सेविका से फ्रेंच में कुछ कहा। सुनकर वह चली गई। उसके जाने पर वह बोले, “आर-यू काफी? आई एम काफी।” उन्होंने जो कहा, उसका शाब्दिक अर्थ था—आप काफी? मैं काफी हूं। बात क्या हुई? उनसे दो-एक सवाल किये तब मालूम हुआ कि वह पूछ रहे हैं, “आप लोगों ने काफी पी या नहीं? अगर नहीं पी तो मैं पिला दूंगा।”

उनकी शब्दावली पर हंसी आने को हुई, पर हमने रोक ली। वह ताड़ गये। रुक-रुककर एक-एक, दो-दो, शब्द अंग्रेजी में बोलते हुए उन्होंने हमें समझाया कि मैं फ्रेंच बोल लेता हूं, कम्बोडियन बोल लेता हूं और तमिल तो मेरी मातृभाषा है। पर अंग्रेजी बहुत कम जानता हूं, ठीक-ठीक बोल भी नहीं पाता।”

इतने में उनकी सेविका एक नौजवान लड़के को साथ लेकर

१२८ : दिव्य जीवन की झांकियां

आई। पता चला कि वह पास के सियमरीयप होटल का कर्मचारी था। चैट्टियार ने उससे बात की और बड़े सस्ते में हमारे लिए एक कमरे का बन्दोबस्त करा दिया। बोले, “आप अपना सामान वहां रखवा दें और हाथ-मुंह धोकर यहां आ जायें। तबतक मैं आपके लिए काफी तैयार करता हूं।”

होटल में सामान जमा कर हमने स्नान किया और थोड़ा विश्राम करके लौटे तो देखते क्या हैं, चैट्टियार काफी और नाश्ता लिये हमारी राह देख रहे हैं। बड़े स्नेह से उन्होंने हमें जलपान कराया और एक मोटर-रिक्शा की व्यवस्था करके बोले, “बादल हो रहे हैं। आप झटपट अंकोरवाट और अंकोरथाम हो आओ। बारिश आ गई तो जाना मुश्किल हो जायगा।”

शाम को लौटने पर उन्होंने हमारे लिए चावल-दाल-साग तैयार किये और अपने साथ भोजन कराया। अगले दिन सबरे काफी पिलाई, फिर बैतई सिरी और बैतई सिमरे आदि देखने के लिए उन्होंने जीप का प्रबंध करा दिया। हम लोग तीन दिन सियमरीयप में रहे। तीनों दिन चैट्टियार ने हमें भोजन कराया। इतना ही नहीं, हमारी पूरी सुविधा का ध्यान रक्खा। हमने देखा कि उसे नीरस लगने वाले व्यक्ति का दिल बहुत ही बड़ा है। जो भी वहां पहुंच जाता है, उसी की वह सब तरह से सहायता करते हैं।

सन् १९५४ में हमारे प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू वहां गये। चैट्टियार ने १२ हजार रीयल खर्च करके उन्हें चाय-पार्टी दी। तीन वर्ष बाद डॉ० राधाकृष्णन् और फिर सन् १९५९ में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद गये तो उनके आतिथ्य में भी उस सदाशयी व्यक्ति ने कुछ उठा न रक्खा। राजेन्द्रबाबू के भोजन की तो उन्होंने स्वयं व्यवस्था की।

चैट्टियार सालों से वहां रहते हैं और स्थायी रूप से बस गये

दिन्य जीवन की झांकियाँ : १२९

हैं, पर अपने देश और देशवासियों को वह नहीं भूले। उनके कमरे में महात्मा गांधी, राजेन्द्रबाबू, नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद आदि भारतीय नेताओं की तस्वीरें टंगी हैं और उनके पूजाघर में विभिन्न धर्म-प्रवर्तकों के बीच गांधीजी का चित्र लगा है।

बातचीत में चेट्टियार बोले, “बहुत सारे लोग यहां आते हैं, पर मैं उनके बीच भेदभाव नहीं करता। ब्राह्मण, क्रिश्चियन, मुस्लिम, स्यामी, कम्बोडियन....नो डिफरेंस, मेन मेन।” (ब्राह्मण, ईसाई, मुसलमान, स्यामी, कम्बोडियन....मेरे लिए कोई अन्तर नहीं, सब इन्सान हैं, इन्सान।

सचमुच उनका स्नेह सबके लिए समान था। वह आदमियों को ही नहीं, सब जीवधारियों को प्यार करते थे। एक दिन शाम को हम नाश्ता करने बैठे तो वह बोले, “यू टाइगर कब? आई एम टाइगर।” बात कुछ अटपटी-सी लगी। वह पूछ रहे थे, “क्या तुम लोगों ने चीते का बच्चा देखा है? मेरे पास है।”

इतना कह कर वह मुस्कराते हुए उठे और सामने की अल्मारी के पास जाकर उन्होंने एक खाने में हाथ डाला। हमने सोचा कि वह टार्च या मोमबत्ती ढूँढ रहे हैं, पर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब हमने देखा कि उन्होंने चीते का सात दिन का एक बच्चा लाकर मेज पर रख दिया। “वाह, कमाल है! पर यह मिला कहां से?” हमने विस्मय से पूछा। उन्होंने जवाब दिया, “एक दोस्त ने जंगल से लाकर दिया है।”

“इसे खिलाते क्या हैं?”

हमारे इस सवाल पर चेट्टियार मुस्करा उठे। बोले, “मेरी बिल्ली ने दो बच्चे दिये हैं। यह उन्हीं के साथ रहता है और बिल्ली का दूध पीता है।”

१३० : दिव्य जीवन की झांकियां

तीसरे दिन हमने बिदा ली तो चेट्टियार हमें रिक्शे तक पहुंचाने आये। मेरे साथी ने कहा, “हमारे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये।”

कहते-कहते उनकी आंखें डबडबा आईं। बोले, “हिन्दुस्तान पहुंच कर मुझे भूलिये नहीं, पत्र लिखते रहिए। बस, मैं इतना ही चाहता हूं। मौका मिले तो फिर आइये।”

: २० :

सेवा का सन्तोष

अमरनाथ की यात्रा के लिए हमारी टोली पहलगाम (काश्मीर) में इकट्ठी हो गई। लेकिन चलने से पहले अचानक एक समस्या उठ खड़ी हुई। मेरा लड़का लिदर नदी के पानी में से काफी समय तक गोल-गोल पत्थर बीनता रहा। सितम्बर का महीना था। देर तक ठण्डे पानी में रहने के कारण उसे शाम को जुकाम हो गया और रात को बुखार आ गया। हम परेशानी में पड़े कि उस हालत में उसे अमरनाथ ले जाना ठीक होगा या नहीं। मेरी पत्नी कहती थीं कि उसको लेकर वह वहीं रह जायंगी और मैं टोली के साथ चला जाऊं। मेरा कहना था कि मैं तो कभी भी यात्रा कर सकता हूं, उनके लिए बार-बार आना संभव नहीं होगा। इसलिए वह चली जायं। दोनों का अपना-अपना आग्रह था। जब कोई फैसला न हो सका तो सोचा गया कि लड़के को डाक्टर को दिखाया जाय और अगर डाक्टर कह दें कि उसे ले जाया जा सकता है तो सब चलें।

पहलगाम छोटी-सी जगह है। हम लोग एक कैमिस्ट की दुकान पर यह पूछने के लिए गये कि डाक्टर कहां मिलेगा। दुकानदार

बोला, “अभी-अभी तो एक डॉक्टर यहाँ थे। शायद बाहर सड़क पर होंगे। मैं अभी देखता हूँ।”

बाहर आकर उसने देखा तो डॉक्टर सामने सड़क पर खड़े थे। हम उनके पास गये। लड़का साथ था। हमने कहा, “डॉक्टर, हम अगले दिन अमरनाथ जाना चाहते हैं, पर इस लड़के की तबीयत खराब हो गई है। खांसी है, बुखार है। क्या करें?”

डॉक्टर ने स्टैथेसकोप से उसकी छाती देखी, मुंह खुलवा कर गला देखा और बोले, “आप बेफिकर होकर इसे ले चलिये। कल मैं भी तो अमरनाथ के दर्शन करने जा रहा हूँ।”

आगे बातचीत हुई तो मालूम पड़ा कि वह दार्जिलिंग से आ रहे हैं। “अमरनाथ की यात्रा की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी, लेकिन झंझटों में निकलना ही नहीं हो पाया। अब आकर जरा फुरसत मिली तो भाग आया। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें और लड़के को ले चलें।” इतना कह कर उन्होंने प्यार से लड़के की पीठ थपथपाई।

डॉक्टर के प्रोत्साहन से हम सबने अमरनाथ ले जाने का निश्चय कर लिया और तैयारी में जुट गये।

अगले दिन सबेरे ९ बजे के लगभग हमारी टोली टट्टुओं पर चंदनवाड़ी की ओर रवाना हुई। अपने कार्यक्रम के अनुसार हमें चंदनवाड़ी पर रुक कर भोजन करना था और पहला पड़ाव शेषनाग से पहले जोजपाल के मैदान में डालना था।

इसी हिसाब से हमने चंदनवाड़ी पर एक होटल में खाना खाया और शाम को दस हजार फुट की ऊंचाई पर जोजपाल के मैदान में पहुँच कर रात को ठहरने के लिए अपना तम्बू खड़ा कराया। उसके बाद जैसे ही खाना खाने बैठे कि बड़े जोर की

१३२ : दिव्य जीवन की झांकियां

बारिश आ गई और ओले गिरने लगे । हमें सबसे अधिक चिन्ता बीमार लड़के की हुई । कहीं उसकी तबीयत और ज्यादा खराब हो गई तो ? पर अब हो क्या सकता था !

आधी रात के बाद पानी थमने पर बाहर आये तो आकाश एकदम निर्मल था और त्रयोदशी के चन्द्रमा की चांदनी चारों ओर फैली थी । सारा मैदान बर्फ से सफेद हो रहा था । दृश्य बड़ा अच्छा था, पर दिल कांप रहा था कि आगे क्या होगा ।

जैसे-तैसे रात कटी । सबेरे जल्दी उठ कर शीत से ठुठरते निवृत्त हुए और जलपान करके आगे की मंजिल पर चल पड़े । मील डेढ़ मील निकल कर शेषनाग पहुंचे कि आसमान में काली घटाएं घिरने लगीं । हमने टट्टुओं की रफ्तार तेज करने की कोशिश की, पर महागुनस की चढ़ाई शुरू होते ही मूसलाधार वर्षा होने लगी । पिछली रात की बारिश से रास्ता इतना रपटीला हो गया था कि टट्टुओं के पैर आध-आध गज सरक जाते थे । तब लगता था कि नीचे घाटी में पहुंचे, जहां मौत बांहे फैलाए खड़ी थी ।

बड़ी मुश्किल से पंचतरणी पहुंचे । वह हमारा दूसरा पड़ाव था । अमरनाथ यहां से कुल चार मील था । हमारी योजना थी कि रात वहां बिता कर अगले दिन तड़के ही चल देंगे और अमरनाथ के दर्शन करके दोपहर तक वहीं लौट आवेंगे । इस बीच बोझी खाना बना लेंगे और सामान बांध लेंगे । हम लोग लौट कर खाना खायेंगे और चल पड़ेंगे । रात शेषनाग पर बितावेंगे ।

पंचतरणी पर मौसम अच्छा रहा । रात को आकाश साफ़ रहा और चतुर्दशी के चंद्रमा की चांदनी में जो दृश्य दिखाई दिये, उनकी शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता । हम लोग रात भर प्रकृति की छटा को देखते रहे । वहां बहुत से और भी

यात्री आ गये थे। पर तनिक भी शोर न था। सिन्धु नदी की धारा के स्वर को छोड़ कर एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता था।

सबरे उठ कर अमरनाथ की ओर चले तो हमारी प्रसन्नता का पार न था। चारों ओर सुनहरी धूप फैली थी और उससे भी ज्यादा आनंददायक बात यह थी कि आसमान में बादलों का नाम न था।

दो मील बात-की-बात में निकल गये। तभी देखते क्या हैं कि सामने से एक सज्जन धीमे-धीमे, रुक-रुक कर, चले आ रहे हैं। पास आने पर पता चला कि वह तो दार्जिलिंग वाले डाक्टर हैं। नमस्कार करके हमने कहा, “डाक्टर, आपने तो कमाल कर दिया। हम सब पर बाजी मार ली। हम दर्शन करने जा रहे हैं और आप कर भी आये।”

बड़े गंभीर स्वर में डाक्टर बोले, “नहीं, भाई साहब, मैं अमरनाथ नहीं जा सका। जा भी नहीं सकूंगा।”

विस्मय से हमने पूछा, “क्यों? अब तो कुल दो मील की बात रह गई है। आप जा क्यों नहीं सकेंगे?”

वह बोले, “मुझे हाई ब्लडप्रेशर है। यहां तक चला आया, पर अब मेरी सांस बुरी तरह फूलती है। एक कदम भी नहीं चला जाता—न पैदल, न टट्टू पर। लगता है, दिल की धड़कन बंद हो जायगी।”

हमने कहा, “नहीं, डाक्टर, आप चलिए। आपने जाने कितनों को हिम्मत देकर यह यात्रा कराई है। यह हो नहीं सकता कि आप न जायें।”

डाक्टर की आंखें भर आईं। बोले, “मैं तो आया ही इसीलिए था, पर मेरा जाना नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा। आप लाग

१३४ : दिव्य जीवन की झांकियां

जाइये और अच्छी तरह दर्शन कीजिये । मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं ”

इतना कहकर डाक्टर ने एक ओर को हट कर हमारे लिए रास्ता कर दिया ।

अमरनाथ का दर्शन करके दोपहर को पंचतरणी लौटे तो देखा, किसी टोली की एक बहन टट्टू पर से गिर पड़ीं । शायद बांह की हड्डी उतर गई । अब क्या हो ? मदद के लिए इधर-उधर दौड़े तो देखा, वही डाक्टर मौजूद हैं । उन्होंने हड्डी बिठाई और पट्टी बांधी । शाम को शेषनाग पर एक महिला संकरे रास्ते पर टट्टू के सामान से रगड़ खा गई । बदन छिल गया । उनकी चोट पर उन्होंने डाक्टर ने दवा लगाई । किसी के सिर में दर्द था, किसी को ठंड लग गई थी, किसी को दस्त हो गये थे और न जाने कहां-कहां सेवा की जरूरत हुई । डाक्टर सब जगह हाजिर थे ।

डाक्टर अमरनाथ के दर्शन नहीं कर पाये, इसका हम लोगों को मलाल था, पर उनके चेहरे पर तो संतोष की झलक थी, क्योंकि ऐसे बीहड़ स्थान पर भी वह दूसरों की सेवा कर सके ।

183.1

Digitized by eGangotri

32869

'मंडल' का आचार और नीति-साहित्य

परमसखा मृत्यु

अमृत की बूँदें

तामिलवेद

तुकाराम गाथासार

शिष्टाचार

आगे बढ़ो

दिव्य-जीवन

सूक्ति रत्नावली

आत्म-रहस्य

हमारे संस्कार-सूत्र

जीवन-क्रान्ति की दिशा

महाभारत के सूक्ति-रत्न

दिव्य-जीवन की भांकियां

32869



सत्यमेव जयते

तीन रुपये